जीवन तथा मृत्यु के परे

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

दिसम्बर २०१५

अग्निशिखा दिसम्बर २०१५ वर्ष ४६, अंक ५, पूर्णांक ५४४

विषय-सूची

सन्देश	श्रीमां	३

जीवन तथा मृत्यु के परे

मृत्यु तथा उससे सम्बद्ध घटनाएं	'श्रीमातृवाणी' से	४
मृत्यु पर श्रीमां का कार्य		१५
चिर जीवन्त उपस्थिति		१९
अमरता तथा मृत्युविहीन अवस्था		२८
'मैं यहीं हूं, मैं यहीं हूं'	नीरदवरण	२९
समाधि (कविता)	सुरेशचन्द्र त्यागी	३३
बुढ़ापा और मृत्यु	'श्रीमातृवाणी' से	३४
दो साधकों के शरीर-त्याग पर श्रीमां का वक्तव्य		३७
श्रीमां का अन्तर्दर्शन (२)		३९

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		४२
गुप्त रहस्य	नलिनीकान्त गुप्त	४५
एक साधक के साथ पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४७
मृत्यु का अर्थ	श्रीमां/श्रीअरविन्द	५१
प्रेम का चमत्कार	यशपाल जैन	५२
'नयी कोंपलें': आवाज सुन कर...	शक्ति शर्मा	५३
"अच्छा जीजी नमस्ते..."	वन्दना	५४

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

Website: www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

प्रत्यक्ष दर्शन में कैसी प्रचुरता है! पूरी व्यक्तिगत सत्ता विनयशील, नम्र, समर्पित, वन्दना करती हुई, शान्त और मुस्कुराती हुई, सभी सत्ताओं के साथ एक अनुभव करती हुई, मूल्यों में कोई भेद करने में असमर्थ, सभी वस्तुओं के साथ सम्पूर्ण एकात्मता के साथ तेरे आगे उन सबके साथ मिल कर घुटने टेके हुए है और साथ ही **तेरी शक्ति** की दुर्जेय सर्व-शक्तिमत्ता **जो यहां उपस्थित** है और अभिव्यक्ति के लिए तैयार है, प्रतीक्षा कर रही है, शुभ मुहूर्त का, अनुकूल अवसर का निर्माण कर रही है : यह तेरे विजयशील एकाधिपत्य की अतुलनीय भव्यता है।

शक्ति यहां है, खुश हो जाओ लोगो, जो प्रतीक्षा और आशा कर रहे हो : नयी अभिव्यक्ति निश्चित है, नयी अभिव्यक्ति निकट आ गयी है।

शक्ति यहां है।

समस्त प्रकृति प्रसन्नता में उल्लसित होती और गाती है, सारी प्रकृति उत्सव मना रही है। **शक्ति यहां विद्यमान है।**

उठो और जियो, उठो और प्रदीप्त होओ, उठो और सबके रूपान्तर के लिए युद्ध करो!

शक्ति यहां विद्यमान है।

—श्रीमां

मृत्यु तथा उससे सम्बद्ध घटनाएं

सुषुप्ति (trance), नींद और मृत्यु

क्या नींद और मृत्यु में भेद है, या फिर वे समान हैं?

नहीं, नहीं! वे समान बिलकुल नहीं हैं। हां, जब व्यक्ति सुषुप्ति में चला जाता है तो वह मृत्यु-सदृश अवस्था होती है, बस एक कड़ी बची रहती है —मात्र एक कड़ी, नहीं तो व्यक्ति पूरी तरह जीवन से बाहर निकल जाता है। सचमुच तब शरीर स्तम्भ की तरह जड़ हो जाता है, लेकिन प्राण की सबसे अधिक भौतिक चीजें तब भी बनी रहती हैं।

मेरे कहने का मतलब यह है कि नींद में हम जिन जगहों पर जाते हैं, मृत्यु में भी क्या वहीं जाते हैं?

नहीं, नहीं, नहीं। बहुधा नींद में—बहुत ही कम अपवादों को छोड़ कर —व्यक्ति उन सभी चीजों के सम्पर्क में आता है जो अवचेतना से उठती हैं : मस्तिष्कीय अवचेतना, भावनात्मक अवचेतना, भौतिक अवचेतना; व्यक्ति के सपनों का ९९ प्रतिशत यही सब होता है। सामान्यतः मन इधर-उधर भटकने लगता है, लेकिन जब मन लौटता है तो ९९.५ प्रतिशत उसे कुछ नहीं याद रहता, क्योंकि कड़ी ठीक तरह से जुड़ी नहीं होती।

नींद का उद्देश्य है—सच्चिदानन्द की चेतना के साथ सम्पर्क पुनः स्थापित करना। लेकिन मुझे नहीं लगता कि सौ में से एक भी ऐसा कर पाता है! लेकिन नींद और मृत्यु अलग हैं... वे भिन्न अवस्थाएं हैं। जब तक तुम्हारा शरीर है, वह 'मृत' से एकदम अलग अवस्था है। जब किसी को चिकित्सक मृत घोषित कर देते हैं उसके बाद सात दिनों तक व्यक्ति बीच की अवस्था में रहता है; परन्तु मृत्यु की वास्तविक अवस्था एकदम से भिन्न होती है क्योंकि तब यह भौतिक शरीर नहीं होता।

... नहीं, नींद अलग है। हां, कोई भिन्न चीज। यह ज्यादातर तो तमस् में लौट जाना होता है। हम सब जानते हैं कि निस्सन्देह, निश्चेतना की गहराइयों में भी 'भागवत चेतना' होती है, लेकिन फिर भी नींद पतन

जैसी दीखती है, और ऐसे लोग हैं जो नींद में प्रायः पूरी तरह से निश्चेतना में गिर जाते हैं और वे सोते वक्त जितने थके हुए होते हैं उससे कहीं ज्यादा सुस्त और ढीले सवेरे उठने पर होते हैं।

सुषुप्ति, शरीर से बाहर निकलने का अनुभव और मृत्यु

एक और चीज होती थी (*हंसी*) : जब मैं किशोरी थी, तब भी मैं किसी काम के बीच में, किसी वाक्य या किसी भी क्रिया के बीच में अचानक ध्यान यानी सुषुप्ति में चली जाती थी—कोई नहीं जानता था कि वह क्या है! सब समझते थे कि मैं सो गयी! लेकिन मैं सचेतन रहती थी, किसी शब्द के बीच, मेरा हाथ ऊपर उठा हुआ—और पुफ़! मैं वहां नहीं होती! (*श्रीमां हंसती हैं*) ऊपर से लगता कि मैं उसी अवस्था में सो गयी! लेकिन अन्दर बहुत ही तीव्र और रुचिकर अनुभूति चलती रहती। जब मैं बहुत छोटी थी तब भी ऐसा होता था।...

इसी दौरान मैं रोज रात को अपने शरीर से बाहर निकल जाती थी और मैं वह कार्य करती थी जिसकी चर्चा मैंने *'प्रार्थना और ध्यान'*[१] में की है—मैंने सरसरे तौर पर इसकी व्याख्या की है। रोज रात को, एक ही समय पर, जब सारा घर बहुत शान्त होता था, मैं अपने शरीर से बाहर निकल जाती और मुझे विभिन्न प्रकार की अनुभूतियां होतीं। और फिर धीरे-धीरे मेरा शरीर निद्राचारी हो गया (यानी, उस रूप की चेतना अधिकाधिक सचेतन होती गयी और साथ ही इस रूप के साथ भी मेरा सम्पर्क प्रबल रूप से बना रहता)। मैं उठ कर चलने की आदी हो गयी —लेकिन नींद में जैसे सामान्यतः लोग चला करते हैं वैसे नहीं : मैं उठती, अपनी दराज खोलती, कागज का एक पुर्जा निकालती और लिखने लगती... कविताएं। हां, कविताएं लिखती—मैं, जिसके अन्दर कवि का कोई गुण न था! मैं संक्षेप में लिख लेती, फिर बड़ी सचेतनता के साथ सब कुछ वापिस दराज में रख देती, सब कुछ सावधानी से बन्द कर देती और बिस्तर पर वापिस चली आती!

एक शिष्य के साथ वार्तालाप ५ अगस्त १९६१

[१] २२ फरवरी १९१४ की प्रार्थना—खण्ड १, पृ. ५१-५२

मृत्यु के क्षेत्र में सचेतन रूप से प्रवेश करना

सचेतन रूप में मृत्यु के क्षेत्र में प्रवेश करने और सचेतन रूप में शरीर से बाहर जाने में क्या अन्तर है? बहुत-से लोग अपने शरीर से बाहर जा सकते हैं, ठीक है न?

हां, किन्तु वे सब मृत्यु के लोक में नहीं जाते।

क्या इसकी भी वही विधि है जो शरीर से बाहर जाने की है?

हां, किन्तु वह केवल आरम्भ है। व्यक्ति शरीर के बाहर जाना सीख कर आरम्भ करता है। बहुत-से लोग, अपनी निद्रावस्था में शरीर से बाहर जाते हैं। वे थोड़े-बहुत सचेतन रूप में ही करते हैं—पर अधिकतर अचेतन रूप से ही यह कार्य करते हैं, लेकिन फिर भी कुछ लोग इसे सचेतन रूप में करते हैं। वे अपने शरीर से बाहर जाते हैं पर रहते हैं भौतिक क्षेत्र में ही। अधिक-से-अधिक वे किसी मानसिक क्षेत्र में चले जाते हैं, पर मृत्यु के क्षेत्र में नहीं।

कुछ लोग वहां जाते भी हैं, किन्तु तब, प्रक्रिया को पूरा करने के लिए... तुम्हें यह जानना चाहिये कि जब व्यक्ति अपने शरीर से बाहर जाता है, तो वह कुछ कड़ियों से शरीर के साथ बंधा रहता है—मैं उन्हें क्या नाम दूं? वे प्राणिक कड़ियां हो सकती हैं, मन की कड़ियां, या अन्तरात्मा की कड़ियां हो सकती हैं—जब वह बाहर जाता है, तो सब प्रकार की वस्तुएं शरीर से बाहर जा सकती हैं। साधारणतया जो चीज बाहर जाती है वह बड़ी सूक्ष्म होती है, जैसे, मन या उच्चतर प्राण, बाकी काफी कुछ शरीर में ही रहता है और वह शरीर को बेसुधी की अवस्था में जाने से रोकने के लिए काफी होता है। कुछ लोग निद्रावस्था में चलते-फिरते भी हैं: उनकी सत्ता का एक भाग तो बाहर चला जाता है, किन्तु उनकी प्राणिक सत्ता का अत्यधिक स्थूल भाग शरीर में ही रहता है। और जब तक वह रहता है, पूरी तरह से प्राण के क्षेत्र में ही रहता है। पहली बात यह है कि जो भाग मृत्यु के समय शरीर को छोड़ता है ठीक उसी भाग को शरीर से अलग करना आसान नहीं होता। इसके लिए बड़े कठोर अनुशासन और बहुत लम्बे अभ्यास की आवश्यकता है। बहिर्गमन की एक प्रक्रिया होती है

जिसका अनुसरण करके ही वे भाग, जो मृत्यु के समय शरीर को छोड़ते हैं, शरीर के बाहर जाने में सफल होते हैं; और इस अवस्था में शरीर एक अचेतन अवस्था में चला जाता है। वह एक ऐसी अवस्था में चला जाता है जो मृत्यु की-सी होती है। वह शीघ्र ही पूरी तरह से कड़ा पड़ जाता है। हां, तो ये सब बातें सीखने से ही आती हैं, और यह सीखना बहुत सरल नहीं है; और यदि व्यक्ति इसे पूरी तरह से करना चाहे, तो वहां शरीर की चौकसी करने के लिए किसी को सदा उपस्थित रहना चाहिये ताकि कोई दुर्घटना न हो जाये। अकेले यह कार्य कभी नहीं किया जा सकता। शरीर की रखवाली करने के लिए किसी का वहां होना अति आवश्यक है।

किन्तु यदि व्यक्ति यह सब कर भी ले, तो भी जिस अनुभूति की मैं बात कर रही हूं वह यह नहीं है। जिस अनुभव की बात मैं कर रही हूं वह इससे भी कहीं अधिक कठिन है। एक बार यदि व्यक्ति शरीर को अचेतन अवस्था में छोड़ कर उससे बाहर चला जाये, तो वह उससे सम्बद्ध सारी कड़ियां तोड़ देता है। अतएव, वह वास्तव में मर जाता है; दूसरे शब्दों में, हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है। किन्तु "शरीर में जीवन-शक्ति" रहती है, और चूंकि ऐसा किसी दुर्घटनावश नहीं हुआ है बल्कि व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक ज्ञान और शक्ति के साथ शरीर से बाहर गया है, इसलिए वह जबरदस्ती वापिस लौट सकता है, अर्थात्, वह पहले सम्बन्ध को पुनः स्थापित कर सकता है, और शरीर में बलपूर्वक फिर से प्रवेश कर सकता है। यह कोई सुखद कार्य नहीं है—सब कुछ बहुत कठिन है। यूं तो, कागज पर यह सब बड़ा सरल-सा प्रतीत होता है। किन्तु यह सरल नहीं है।

आपने यहां कहा है: "ऐसा बहुत कम लोगों की पहुंच में है।" इसका अर्थ यह हुआ कि कुछ लोगों ने ऐसा किया है। फलस्वरूप वे अमर हो गये होंगे, किन्तु अभी तक तो...

अमरत्व! नहीं, मैंने यह नहीं कहा कि यह अमरत्व है। मैंने कहा है कि वे मृत्यु के सब प्रकार के भय से मुक्त हो गये। यह एक और ही बात है।

किन्तु वे मृत्यु के क्षेत्र में प्रवेश तो करते हैं न?

हां, किन्तु *उस समय* शरीर अच्छी अवस्था में होता है। शरीर स्वस्थ होता है और उसे फिर से पाया जा सकता है—इस प्रकार लम्बे समय तक शरीर से बाहर रहने का प्रश्न नहीं है!

किन्तु उन्हें वह अनुभव तो प्राप्त हो गया, अतएव जब वे सचमुच में मरे तो वे उसी वस्तु को दुहराने की कोशिश तो कर सकते हैं न?

केवल तभी *यदि* उनका शरीर ठीक अवस्था में हो। किन्तु सामान्यतया, जब व्यक्ति मरता है तो, तुम जानते ही हो, शरीर में कुछ गड़बड़ होती है, गम्भीर प्रकार की गड़बड़। किन्तु फिर भी, अभी तक यह निश्चित नहीं हुआ है कि एक बार शरीर से बाहर जाकर व्यक्ति असन्तुलन की इस अवस्था को पुनः ठीक करने की योग्यता नहीं रखता, जब तक कि शरीर के साथ कोई गम्भीर बात ही न हो जाये, जैसे हृदय में कोई छुरा मार दे या सिर काट दे! यह काफी गम्भीर है किन्तु फिर भी, यदि शरीर ठीक-ठाक रहे, यदि केवल असन्तुलन ही हो तो सम्बन्ध पुनः स्थापित हो सकता है।

मां, यदि वे कड़ियां टूट जायें तो फिर क्या होता है?

यदि कड़ियां टूट जायें? व्यक्ति मर जाता है।

किन्तु जो भाग शरीर से बाहर चला गया है उसका क्या होता है?

वह, यदि वह सचेतन होता है, तो पूर्णतया सचेतन रहता है। उसका अपना स्वतन्त्र जीवन होता है, वह पूर्ण रूप से सचेतन रहता है। उसकी डोरियां कटें या नहीं, उसके जीवन में इससे कोई परिवर्तन नहीं होता। इससे न तो उसे अधिक चेतना की प्राप्ति होती है और न ही उससे छीनी जाती है—जो भी चेतना, ज्ञान और शक्ति उसके पास होती है वह उसी के पास रहती है। जो ऐसा कर सकता है वह शरीर पर निर्भर नहीं रहता। दूसरे शब्दों में, सचेतन होने के लिए, व्यक्ति शरीर पर निर्भर नहीं करता, जरा भी नहीं। उसकी चेतना बिलकुल स्वतन्त्र होती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ६०-६२

मृत्यु का अनुभव

कुछ समय पहले आपने कहा कि आपके शरीर ने पहले एक बार मृत्यु का अनुभव किया था...

ओह, हां।

लेकिन आपने उसके बारे में बतलाया नहीं।

ओह, सब जानते हैं : यह तेमसेन (एलजीरिआ) में हुआ जब मैं तेओं के साथ काम कर रही थी। मैं पूरी तरह भौतिक रूप से शरीर के बाहर चली गयी थी, शरीर की हालत एकदम खम्भे की सी हो गयी थी, और कोई चीज आयी और उसने शरीर से बंधी कड़ी को तोड़ दिया। धागा टूट गया।

लेकिन उस समय आपको क्या अनुभव हुआ?

अनुभव... *(हंसते हुए)* शरीर में वापिस लौटना असम्भव हो रहा था! लेकिन तेओं वहां थे (वे तो बिलकुल घबरा गये!) लेकिन मुझे ज्ञान था —गुह्यवाद का काफी ज्ञान था। ज्ञान था और संकल्प भी था *(शरीर को वापिस बलपूर्वक अन्दर लाने की मुद्रा)* और एक आन्तरिक श्रद्धा थी (लेकिन मैं कभी इसके बारे में बात नहीं किया करती थी), और साथ ही थी एकाग्रता। रही बात तेओं की, वे समर्थ थे, वे जानते थे। वे "खींचने" में समर्थ थे। और शरीर में विकार नहीं आया था, समझ रहे हो, कोई हानि नहीं हुई थी, इसलिए खींचना मुश्किल न था। शरीर बहुत बढ़िया अवस्था में था, लेकिन धागा टूट गया था, यानी, जो चीज जीवन प्रदान करती है, चली गयी थी और वापिस नहीं आ पा रही थी।

मैं शक्ति तथा संकल्प के फलस्वरूप वापिस आ गयी, क्योंकि... वास्तव में, बस इसी कारण कि धरती पर मेरा काम बाकी था।

मेरे ख्याल से यह १९१० में घटित हुआ था।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप १४ जून १९६७

मृत्यु के स्तर

मृत्यु तो इसलिए होती है कि अन्तरात्मा शरीर छोड़ देती है। है न?

अन्तरात्मा जब देखती है कि शरीर अयोग्य, अक्षम, अनिच्छुक... हो गया है तो वह निश्चय कर सकती है कि शरीर को चल बसना चाहिये, तो वह मर जाता है; लेकिन अन्तरात्मा का चले जाना शरीर को मारता नहीं। कई लोग अन्तरात्मा-विहीन हैं, उनकी अन्तरात्मा उनके शरीर में नहीं होती—ऐसे कई हैं। और वे बहुत अच्छी तरह जीते हैं।

हां, चैत्य सत्ता के बिना जीना कठिन है। समझ रहे हो? चैत्य सत्ता हमारा व्यक्तिगत चोगा है—शाश्वत अन्तरात्मा और अस्थायी शरीर के बीच यह आवरण है; (एक जीवन से दूसरे जीवन में हम उसे ही धारण करते हैं) चैत्य सत्ता, यानी यह आवरण प्रत्येक जीवन अधिक विकसित, वैयक्तिक, व्यक्तिगत रूप से अधिकाधिक सचेतन बनता जाता है। जब वह शरीर छोड़ देती है तो बाकी उसका अनुसरण करता है, यानी मृत्यु हो जाती है...

मनुष्य जिसे "मृत्यु" कहते हैं... मैं यहां कितनों ही को देखती हूं जो मेरे लिए जीते हुए भी मृत-समान हैं (ये प्रायः वे लोग होते हैं जिनका अपनी अन्तरात्मा के साथ सम्पर्क नहीं होता)। लेकिन यह जानने के लिए व्यक्ति के अन्दर अन्तर्दृष्टि होनी चाहिये। परन्तु लोग जिसे "मृत्यु" कहते हैं वह है—कोषाणुओं का विघटन और रूप का विलयन, यह तब होता है जब सबसे अधिक जड़-भौतिक, जो जीवन के साथ सम्पर्क साधता है, यानी वह प्राण-शक्ति, जीवन से निकल जाती है। उदाहरण के लिए, पशुओं की मृत्यु इसी तरह होती है जब कसाइयों के हाथ वे मारे जाते हैं या एकदम उग्र कुछ घट जाता है! हम देखते हैं कि कई दुर्घटनाग्रस्त मनुष्यों के बुरी तरह विकलांग होने के बावजूद वे जीते रहते हैं। यहां तक कि मुझसे कहा गया है कि हृदय की धड़कन का बन्द होना अनिवार्यत : मृत्यु का चिह्न नहीं है, क्योंकि कई बार रुका हुआ हृदय फिर से धड़कने लगता है। चिकित्सकों का कहना है कि कुछ सेकेण्ड या कुछ मिनट तक—मुझे याद नहीं—रुके रहने के बाद भी कभी-कभी हृदय फिर से धड़कने लगता है। समय बीत जाने के बाद ही विकार शुरू होता है। विकार के

साथ ही स्वभावतः सब कुछ समाप्त हो जाता है।

तो हम कह सकते हैं कि जीवन और मृत्यु के भी कई स्तर हैं : कुछ सत्ताएं न्यूनाधिक रूप में जीवित होती हैं, या अगर हम नकारात्मक रूप में रखें तो कुछ सत्ताएं न्यूनाधिक रूप में मृत होती हैं। लेकिन जो यह जानते हैं कि यह भौतिक आवरण अतिमानसिक प्रकाश को अभिव्यक्त कर सकता है वे सजीव हैं, जो नहीं जानते वे निर्जीव...।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप १४ जून १९६७

... मनुष्य मृत्यु के बारे में कुछ नहीं जानता—वह नहीं जानता कि यह क्या है, वह यह नहीं जानता कि क्या होता है, उसने ढेरों धारणाएं बना रखी हैं, परन्तु कुछ भी निश्चित नहीं है। इसे इसी तरह आगे बढ़ाते हुए, इस तरह आग्रहपूर्वक आगे बढ़ाते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची हूं कि वास्तव में मृत्यु जैसी कोई चीज है ही नहीं।

केवल एक आभास है, एक सीमित दृष्टि पर आधारित आभास। लेकिन चेतना के स्पन्दन में कोई मौलिक फर्क नहीं होता।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. ६३-६४

अगर तुम यह सोचने का प्रयास करो कि वास्तव में जीवन और मृत्यु में कोई फर्क नहीं है (गीता में भी इसके विषय में पुराना कपड़ा उतार कर नया कपड़ा पहनने की बात की गयी है...) तो तुम कह सकते हो कि तब तो जीवन और मृत्यु से अलग कुछ है अवश्य। मैं कहती हूं कि वह है... भगवान्।

या, यह भगवान् की ओर उठाया हुआ हमारा अगला कदम है।

*

अन्तरात्मा परम प्रभु की एक चिनगारी है; मुझे नहीं लगता कि प्रभु को अपने अस्तित्व के बारे में सचेतन होने के लिए शरीर की जरूरत है।

—श्रीमां

मृत्यु के बाद श्रीअरविन्द की सुरक्षा

सवेरे मैंने मृत्युञ्जय की बड़ी बहन के देहान्त के बारे में श्रीमां को सूचना भेजी। मां ने कहा, "हां, बहुत समय से उसकी तबीअत ठीक नहीं चल रही थी।" 'बालकनी दर्शन' के बाद जब श्रीमां नाश्ता कर रही थीं तो उन्होंने कहा कि उन्हें एक बड़ी ही रुचिकर बात का पता चला। मां ने मृत्यञ्जय की बहन के ललाट पर श्रीअरविन्द का प्रतीक देखा। श्रीमां बहुत ही अचम्भे में पड़ गयीं और उन्होंने अपने-आपसे कहा; "क्या? ललाट पर..." तब उन्होंने श्रीअरविन्द को कहते सुना, "अब से जिसका यहां देहान्त होगा, उस पर मैं अपनी मोहर लगा दूंगा, उसकी अवस्था चाहे जैसी होगी, सुरक्षा उसे अवश्य मिलेगी।" तब सवेरे के ६.३० बजे थे।

मैंने सुना था कि मृत्यु के लिए बनारस आदर्श स्थल है। लेकिन अब श्रीअरविन्द ने एक बेहतर और अधिक सुरक्षित स्थान बना दिया था!

१७.५.१९५९ 'Champaklal speaks', पृ. २३४

सबसे अच्छी मनोवृत्ति

उस दिन मैंने तुम्हें बताया था कि इस शरीर को मृत्यु का अनुभव हुआ था जब यह बाहर निकल गया था, और तब शरीर ने कहा था, "ठीक है... यह भी ठीक है।"... अब शरीर के विलयन के बारे में सारे पुराने विचार गायब हो रहे हैं। निस्सन्देह ये विचार बहुत पहले बदल चुके थे और अब स्वयं शरीर इस बात से विश्वस्त हो गया है कि भले वह इस तरह बिखर जाये (यानी, "मृत्यु"), लेकिन यह चीज उसकी चेतना के क्षेत्र को विस्तृत कर देगी। ... मुझे पता नहीं कि इसे तुम्हें कैसे समझाऊं क्योंकि चेतना के लिए व्यक्तिगत आवश्यकता का सारा भाव गायब हो गया है। मैं स्पष्ट देख रही हूं कि सत्य के प्रति उसके प्रतिरोध के कारण ही वह दुःख भोग रहा है। जब पूर्ण संलग्नता आ जायेगी तो दुःख-दर्द उसी क्षण गायब हो जायेंगे।...

तत्त्वतः, सत्ता के अन्दर अब तक अलगाव का जो भाव है उसे विलीन होना होगा। उसे अपने-आपसे कहना होगा, "यह मेरा मामला नहीं है कि मेरा अस्तित्व है या नहीं।" यही वह उत्तम मनोवृत्ति है जिसे शरीर अपना सकता है। तब... वह महान् 'वैश्व लय' के साथ एक हो जाता है।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप ३१ जनवरी १९७०

मर्त्यता का अस्तित्व नहीं है। केवल अमर ही मर सकता है;
मर्त्य न जन्म ले सकता है, न मर सकता है।

—श्रीअरविन्द, 'विचार और सूत्र' से

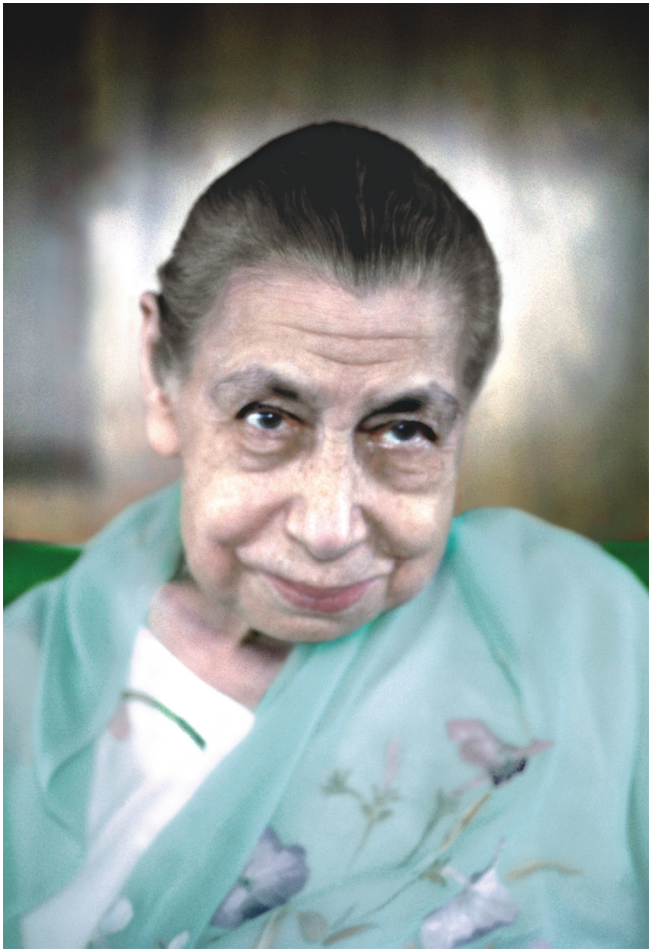

मनुष्यों को अपने बारे में कभी न सोचना चाहिये : इसके विपरीत, उन्हें अपने विचारों को भगवान् पर जमाये रखना चाहिये, और उनकी सभी कठिनाइयां चली जायेंगी। उन्हें अपने-आपको भगवान् की भुजाओं में सौंप देना चाहिये, क्योंकि उनकी भुजाएं अपने बच्चों को आलिंगन में भरने के लिए हमेशा तत्पर रहती हैं। अगर मनुष्य भगवान् की शरण ले लें तो सभी तकलीफें और कठिनाइयां छूमन्तर हो जायेंगी।

'Mother You Said So', हुता ४ तथा १० अक्तूबर १९५७

मृत्यु पर श्रीमां का कार्य

मृत्यु का असुर तथा जीवन का मन्त्र

यह संयोग नहीं बल्कि मेरा चुनाव था कि मैं सभी चार असुरों से मिली—यह परम प्रभु का निर्णय था। पहला, जिसे धर्म शैतान कहते हैं, वह बदल गया और कार्यरत है, दूसरे (दुःख-दर्द के असुर ने), अपने-आपको परम में विलीन कर दिया। तीसरा, मृत्यु का देव—वह तेओं था। और चौथा, जगत् का स्वामी, मिथ्यात्व का प्रभु था।...

बहरहाल, तेओं के कारण ही मुझे सबसे पहले 'जीवन का मन्त्र' मिला था, मन्त्र जो जीवन प्रदान करता है, और वे चाहते थे कि उसे मैं उनको दे दूं, वे उस पर कब्ज़ा करना चाहते थे—वह सचमुच भव्य, प्रबल मन्त्र था! वह जीवनदान का मन्त्र था (वह किसी को भी पुनरुज्जीवन प्रदान कर सकता था, और यह, यानी जीवन प्रदान करना तो उस मन्त्र का बहुत छोटा हिस्सा था)। और वह मन्त्र एक विशेष जगह पर बन्द था (आन्तरिक आयामों के एक गुह्य क्षेत्र में), मोहरबन्द था, उस पर संस्कृत में मेरा नाम लिखा था। उस समय मैं संस्कृत नहीं जानती थी, लेकिन तेओं जानते थे, और जब उस स्थान पर पहुंचने में उन्होंने मेरा नेतृत्व किया तो मैंने उन्हें बताया कि मैंने क्या देखा : 'एक तरह का डिज़ाइन है, यह जरूर संस्कृत है (मुझे उन अक्षरों से लगा कि यह संस्कृत लिपि है)। उन्होंने मुझसे वही उतारने को कहा जो मैं देख रही थी। मैंने उसकी नकल कर ली। वह मेरा नाम था, *मीरा*, संस्कृत में लिखा था। वह मन्त्र मेरे लिए था और केवल मैं ही उसे खोल सकती थी। 'इसे खोल कर मुझे बताओ कि इसमें क्या है,' उन्होंने कहा (यह सब तब हो रहा था जब मैं सुषुप्ति की अवस्था में थी।) और तब तुरन्त 'मेरे' अन्दर की कोई चीज समझ गयी, और मैंने जवाब दिया, 'नहीं', और मैंने वह मन्त्र नहीं पढ़ा।

जब मैं श्रीअरविन्द के साथ थी तो मुझे वह फिर मिला और मैंने वह श्रीअरविन्द को दे दिया।

रूपान्तर की कठिनाई

ऐसी अवस्था में रहना जिसमें सब कुछ परम है, सब कुछ अद्भुत है,

सब कुछ भव्य प्रेम है, सब कुछ... सब कुछ गभीर प्रेम है—यानी, एक अपरिवर्तनीय, अक्षर, आनन्दमयी अवस्था। उसमें रहना और फिर इस शरीर के तत्त्व के साथ कार्य करना, जो उस परम आनन्द के एकदम विपरीत है—शरीर जो क्षयी है, वृद्धावस्था में दृष्टि, बल, सब कुछ खो बैठता है। कभी यहां कष्ट, कभी वहां दर्द, अव्यवस्था, कमजोरी, हर तरह की अक्षमता। और एक ही समय, शरीर चाहे जितने दुःख-कष्ट में हो, उसके अन्दर से एक प्रार्थना उठती है, 'हे प्रभो, तेरी कृपा अपरम्पार है।' तब विपरीतताएं व्यर्थ प्रतीत होती हैं।

मैं अपने अनुभव से जानती हूं कि जब मनुष्य सन्त या साधु बने रहने में सन्तोष का अनुभव करता है, हमेशा उचित मनोभाव अपनाये रहता है, सब कुछ अच्छा चलता है—शरीर बीमार नहीं पड़ता, उस पर प्रहार होने पर भी वह जल्दी ही अपना स्वास्थ्य-लाभ कर लेता है; सब कुछ भली-भांति चलता है... जब तक कि उसके अन्दर रूपान्तर की यह इच्छा नहीं उभरती। रूपान्तर की इच्छा के विरुद्ध सभी कठिनाइयां मुंह बाये आ खड़ी होती हैं; तब अगर व्यक्ति यह कहे, 'सब अच्छा है, चीजें जैसी चल रही हैं चलती रहें, मैं तो पूरी तरह से प्रसन्न हूं, आनन्दमयी स्थिति में हूं,' तब शरीर खुश हो उठता है! रूपान्तर का प्रश्न प्रश्न ही बना रहता है!

एक शिष्य के साथ वार्तालाप ५ नवम्बर, १५ जुलाई १९६१

मृत्यु के बाद का रास्ता साफ करना

... तेओं से मिलने के पहले, कुछ भी जानने के पहले, मुझे रात को अनुभूतियां हुआ करती थीं, मैं रात को उन लोगों की मदद किया करती थी जो तभी दिवंगत हुए हों—मेरे अन्दर ज्ञान था... मुझे ठीक-ठीक पता था कि क्या करना है और मैं वही करती थी। तब मैं करीब बीस साल की थी।

जब मैं तेओं की शिक्षा के सम्पर्क में आयी—उनसे व्यक्तिगत मुलाकात के पहले से ही—मैंने दुनिया-भर की चीजें पढ़ी थीं, समझी थीं, मैं बहुत व्यवस्थित रूप से कार्य कर रही थी। रोज रात को मैं नियत समय पर, शुद्ध पार्थिव वातावरण और चैत्य वातावरण के बीच, प्राण के परे, सुरक्षा का एक पथ बनाती ताकि मृतकों को प्राण से होकर न जाना पड़े—क्योंकि जो लोग सचेतन हैं, लेकिन उन्हें ज्ञान नहीं है, उन्हें इस भयंकर, नारकीय

वैतरणी को पार करना होता है, यह बहुत दुर्गम रास्ता है। यह नारकीय है। मैं वह पथ तैयार कर रही थी—यह सन् १९०३ या १९०४ की बात होगी, मुझे ठीक-ठीक याद नहीं—मैंने यह काम कई महीनों तक किया। उस समय कई चीजें घटित हुईं, सब तरह की असामान्य चीजें। अद्‌भुत। मैं लम्बी-लम्बी कहानियां सुना सकती हूं।...

जब मैं मादाम तेओं से मिली तो मैंने उन्हें इसके बारे में बतलाया। 'हां', उन्होंने कहा, 'यह तुम्हारे काम का एक हिस्सा है जिसे करने के लिए तुम धरती पर आयी हो। वे सभी जिनके अन्दर रत्ती-भर भी चैत्य प्रदीप्त है, वे जो तुम्हारे 'प्रकाश' को देख सकते हैं, वे मृत्यु के समय—वे जहां कहीं भी शरीर छोड़ें—तुम्हारे प्रकाश के पास आयेंगे और तुम उन्हें उस पार पहुंचाने में उनकी सहायता करोगी।' और यह एक अनवरत कार्य है। निरन्तर। इससे मुझे इससे सम्बन्धित बहुत सारी अनुभूतियां हुई हैं कि जब लोग शरीर छोड़ते हैं तो उन्हें क्या-क्या होता है। मुझे हर तरह की अनुभूति हुई, हर तरह के उदाहरण मेरी दृष्टि से गुज़रे। यह सचमुच रुचिकर है।

'Mother's Chronicles' से —सुजाता नाहर

पृथ्वी पर एक 'नये जीवन' का प्रारम्भ

जो काम मुझे रोचक लगता है वह है जो मैं अपने ऊपर कर रही हूं, किसी विशेष फल के लिए नहीं बल्कि सारी धरा के लिए जो सम्भावना खुल रही है उसके लिए... एक नयी प्रक्रिया के लिए जो यहां से निःसृत हो रही है मुझे आधार बना कर, मेरे शरीर से जिसे मैं 'अतिमानसिक' तत्त्व से भर सकी हूं; यह उन तक पहुंच रही है जो इस 'नयी चेतना' के प्रति खुलने को तैयार हैं, जो शरीर का रूपान्तर करने की अभीप्सा करते हैं। उनके लिए काम बहुत हलका हो जायेगा, जो काम मैंने स्वयं पर किया है उसके कारण कितनी ही कठिनाइयां दूर हो गयी हैं... मैं जिस काम में लगी हूं और अपने ऊपर जो परीक्षण कर रही हूं उसमें मुझे कुछ असाधारण अर्थ नजर आता है। यह एक नया अनुभव, नया जीवन शुरू हुआ है जिसमें विभिन्न सम्भावनाएं खुलती जा रही हैं जो जीवन के सत्य की ओर बढ़ती चली जा रही हैं।

—'परम', पृ. ३९-४०

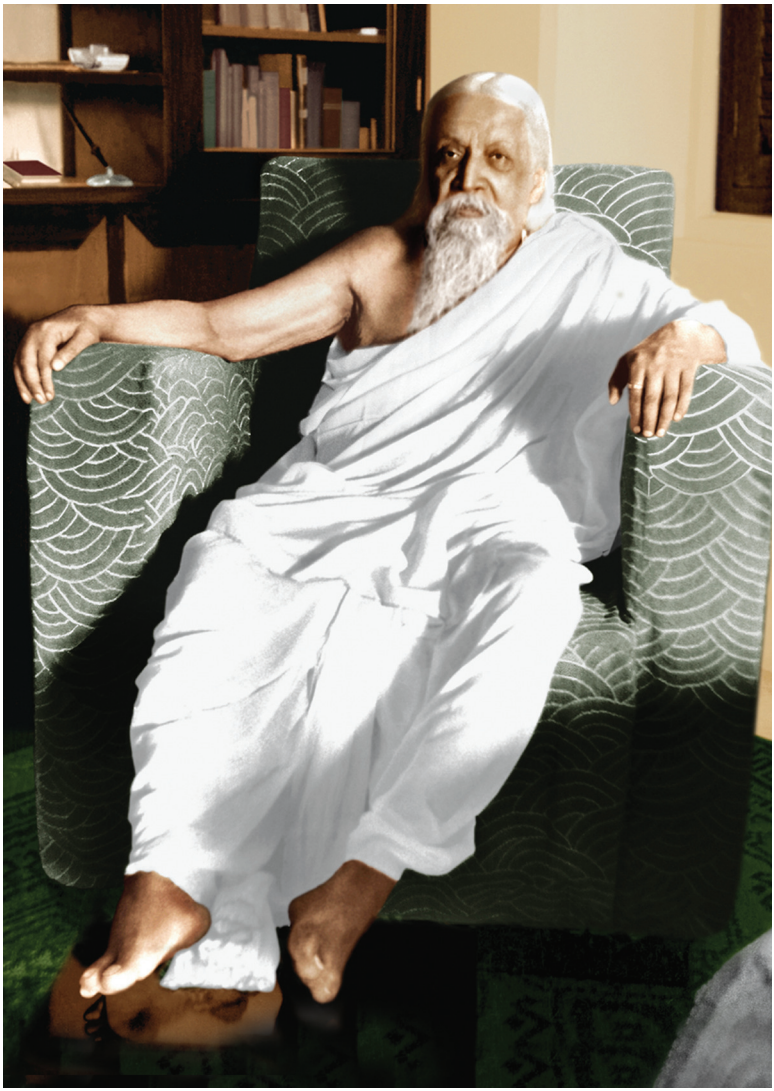

मृत्यु रूपान्तरित होकर जीवन बन जाती है और वही है अमरत्व; क्रूरता परिवर्तित होकर प्रेम बन जाती है और वही है असह्य आनन्दातिरेक; अज्ञान बदल कर प्रकाश बन जाता है जो ज्ञान और प्रज्ञा के भी परे जा पहुंचता है।

—श्रीअरविन्द, 'विचार और सूत्र'

चिर जीवन्त उपस्थिति

श्रीअरविन्द जैसे थे वैसे ही हैं

श्रीअरविन्द अब भी वैसे ही हैं जैसे वे थे... रूप और आकार के सामञ्जस्य के साथ : यहां बहुत, बहुत विशाल *(वक्षस्थल की ओर संकेत)*, चौड़े और मजबूत। और बहुत ही फुर्तीले : हमेशा बहुत ही राजोचित गरिमा के साथ वे आते हैं और जाते हैं, बैठते हैं और उठते हैं। उनका रंग सुनहरा कांसे का-सा है मानों उनके अतिमानसिक स्वर्णिम वर्ण का, उनकी अतिमानसिक सत्ता का जमाव हो; मानों उस सुनहरे रंग ने घनीभूत, एकाग्र होकर उनका रूप और आकार ले लिया हो; और वह प्रकाश को प्रतिबिम्बित नहीं कर रहा था : ऐसा लगता था मानों वह अन्दर से ही प्रदीप्त तथा आलोकित है; (लेकिन वह प्रकाश प्रसारित नहीं हो रहा था), और उस शरीर की कोई परछाईं नहीं पड़ रही थी। लेकिन वह पूरी तरह से सहज-स्वाभाविक शरीर था, यह व्यक्ति को आश्चर्य में नहीं डाल रहा था, यह संसार की सबसे स्वाभाविक वस्तु थी : वे ऐसे ही हैं। चिरयुवा; उनके बालों का रंग उनके शरीर के वर्ण की तरह सुनहरा है, उनकी आंखों में भी स्वर्णिम आभा है। हां, यह पूरी तरह से स्वाभाविक है, इसमें आश्चर्य में डालने की कोई बात नहीं है। वे वैसे ही बैठते हैं जैसे वे बैठा करते थे, जिस तरह वे अपना पैर रखा करते थे (दायां पैर सामने), और पहले की ही तरह, जब वे उठते हैं तो फुरती से : वे यहां आते-जाते हैं।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप २९ जून १९६३

श्रीअरविन्द अब अधिक शक्तिशाली रूप में सक्रिय हैं

मैंने अपने-आपसे श्रीअरविन्द के बारे में एक प्रश्न पूछा था। मैं यह जानना चाहता था कि जब श्रीअरविन्द ने शरीर त्यागा तो वे रूपान्तर के किस बिन्दु तक पहुंच चुके थे? उदाहरण के लिए, वे उस समय जो काम कर रहे थे उसमें, और आप अब जो काम कर रही हैं उसमें, क्या फर्क है?

उन्होंने अपने शरीर में बहुत सारी अतिमानसिक शक्ति इकट्ठी कर ली थी

और जैसे ही उन्होंने शरीर छोड़ा... वे अपने बिस्तर पर लेटे हुए थे, मैं उनके पास खड़ी थी, एक बहुत ही मूर्त और ठोस रूप में—इतने ठोस संवेदन के साथ कि ऐसा लगता था कि शायद वह दिखलायी दे—वह सारी अतिमानसिक शक्ति जो उनके शरीर में थी मेरे शरीर में आ गयी। मुझे उस संक्रमण की रगड़ का अनुभव हुआ। वह असाधारण चीज थी —असाधारण। वह एक असाधारण अनुभूति थी। लम्बे समय तक, लम्बे समय तक यूं (*माताजी अपने शरीर में 'शक्ति' के प्रवेश की मुद्रा बनाती हैं*)। मैं उनके बिस्तर के पास खड़ी थी और यह होता रहा। यह लगभग संवेदन था—यह एक भौतिक संवेदन था।

बहुत देर तक।

*

लेकिन मैं जो बात समझना चाहता हूं वह यह है कि तब आन्तरिक कार्य किस बिन्दु तक पहुंचा था, उदाहरण के लिए, अवचेतना की सफाई और यह सब कहां तक हुए थे? उस समय उन्होंने जितना काम किया था और अब आप जहां तक पहुंची हैं, इन दोनों में क्या फर्क है? मेरा मतलब है : क्या अवचेतना अब कम अवचेतन है या...?

ओह! हां, निश्चय ही। निश्चय ही।

... क्रिया की 'शक्ति' में फर्क है। स्वयं उनमें, स्वयं उनमें जब वे सशरीर थे, तब की अपेक्षा अब अधिक क्रिया, अधिक क्रिया-शक्ति है। और फिर, इसी के लिए तो उन्होंने शरीर छोड़ा था, क्योंकि इस तरह से काम करने के लिए यह जरूरी था।

यह बहुत ठोस है। उनकी क्रिया अब बहुत ठोस हो गयी है। स्पष्ट है कि यह एक ऐसी चीज है जो मानसिक नहीं है। यह अन्य क्षेत्र की है। लेकिन यह वायवीय भी नहीं है—यह ठोस है। हम यहां तक कह सकते हैं कि यह लगभग भौतिक है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. ३४८-४९

श्रीअरविन्द के कमरे में उनकी उपस्थिति प्रबल है

वहां,—वहां 'सत्य' की अभिव्यक्ति होती है। 'उनके' कक्ष के सम्मुख खड़े रहना 'निरपेक्ष परम चेतना' के दर्शन करना है। वह व्यक्ति जो अपने-आपको उद्‌घाटित करना जानता है, अगर वह स्वयं को सचमुच पूरे तौर पर, सहजता के साथ उद्‌घाटित कर सके, वह अनिवार्य रूप से वहां हर चीज के लिए सहायता पायेगा। वह वातावरण अकल्पनीय है! अजेय है! सर्व-शक्तिशाली है! लेकिन कभी दिखावा न करो। उनके सम्मुख व्यक्ति को ऋजु, ईमानदारी के साथ स्पष्टवक्ता और सच्चा होना चाहिये, उनके 'आनन्द' को अनुभव करने के लिए व्यक्ति को बस स्वयं को सच्चाई के साथ उद्‌घाटित कर देना चाहिये।

अनुपम है, अद्वितीय है उनके 'सत्य' की शक्ति। अगर वे स्वयं को अपनी सम्पूर्णता में प्रकट कर दें तो कोई भी उसे सह नहीं पायेगा। इसी कारण मैं तुम्हें पहले से ही चेतावनी दे रही हूं। कभी यह ढोंग मत करो या ऐसा आभास मत दिलाओ कि तुम उनमें से एक हो जिन्हें उनके कक्ष के सम्मुख खड़े रहने की अनुमति है। वह कक्ष उनकी उपस्थिति से स्पन्दित होता है। प्रसन्न रहो और उनके कार्य को यहां सम्पन्न करने के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दो। यह एक अद्वितीय सुअवसर है। उसके योग्य बनो और समय बरबाद मत करो। (मौन)

कैसा चमत्कार! कैसी शक्ति! कैसी गरिमा! 'वे' जो हमारे साथ थे, उनकी 'शक्ति' और उनका 'सामर्थ्य' अब भी उनके कमरे में धड़कता है। यह ध्यान करने और 'सत्य के स्पन्दनों' को ग्रहण करने का स्थान है जो वहां से प्रसारित होते हैं। कक्ष उन स्पन्दनों से अभिपूरित है, लबालब भरा है। जो सच्चे और निष्कपट हैं वे श्रीअरविन्द की उपस्थिति को वहां सुस्पष्टतया अनुभव कर सकते हैं।

'Blessings of the Grace', पृ. १०९-१०

समाधि पर श्रीअरविन्द की शाश्वत उपस्थिति

अगर तुम कठिनाई में हो और कोई उत्तर चाहते हो, वह कुछ भी हो सकता है, या अगर तुम चैन का अनुभव नहीं कर रहे हो या कोई चीज

तुम्हें विक्षुब्ध बना रही है या अगर तुमने कोई भूल कर दी है जिससे तुम परेशान हो—मान लो तुम नाराज हो गये, असन्तोष ने तुम्हें आ घेरा, कोई बहुत ही तुच्छ-सी बात हो, एकदम सामान्य और जिसका कोई मूल्य ही न हो, या अकारण ही तुम बेचैन हो उठो, अगर कोई वस्तु, उसे जैसा होना चाहिये वैसी न हो,—ऐसे समय, अगर तुम ऐसी दुःखद स्थिति से उबरना चाहो तो सीधे समाधि पर आ जाओ, समाधि पर अपना मत्था टेक कर, बिना हिचकिचाये, बिना किसी संशय के, वह सब कुछ श्रीअरविन्द से स्पष्ट रूप में कह दो जो तुम्हें तंग कर रहा है, ठीक वैसे ही, जैसे तुम मुझसे आकर कहते हो—और कितनी ही बार तुमने देखा है कि ऐसा करते ही तुरन्त, तुम्हारी कठिनाइयां गायब हो जाती हैं, जिस क्षण तुम मुझसे आकर उनके बारे में कहते हो वे पूरी तरह विलीन हो जाती हैं।...

उसी तरह तुम्हें उनसे कहना चाहिये *(श्रीअरविन्द)*; इस तरह, तुम्हें समाधि पर अपना सिर रखना चाहिये *(श्रीमां अपना सिर झुकाती हैं)* और तब तुम उनसे कह दो कि वे तुम्हें तुम्हारी सारी कठिनाइयों से मुक्ति दिला दें। या तुम एक प्रार्थना भेजो, *(श्रीमां हृदय-केन्द्र से हाथ को ऊपर ले जाती हुईं)* लेकिन यह करो पूरे सच्चे मन से, और फिर तुम अपनी एकाग्रता को अपनी सत्ता की गहनतम गहराई में ले आओ। मैं सौ फीसदी विश्वास के साथ कह सकती हूं कि वे तुम्हारी प्रार्थना सुनेंगे और तुम्हें उत्तर देंगे। निस्सन्देह, तुम उनके साथ आसानी से सम्पर्क साध सकते हो। बहुत से हैं जो उनके साथ सम्पर्क स्थापित करके अपने उत्तर पा लेते हैं। वे अब हमारी पहुंच में अधिक हैं और अब वे कहीं अधिक सक्रिय हैं। तो समझ रहे हो, इस तरह तुम्हें प्रतीक्षा नहीं करनी होती...

और यह तरीका सुविधाजनक है, अधिक प्रत्यक्ष और अधिक सुगम। तुम किसी भी समय उनसे पूछ सकते हो। अपना उत्तर पाने के लिए बस तुम्हें समाधि तक आना होगा।

अब वे प्रत्येक की पहुंच में हैं

अगर कुछ गड़बड़ है और तुम उसका कारण जानते हो, या अगर तुम अपनी किसी कमजोरी से पीछा छुड़ाना चाहते हो, रोगमुक्त होना चाहते हो, या शुद्ध होना चाहते हो, यह चाहते हो कि तुम्हारे अन्दर की

कठिनाई निकाल बाहर कर दी जाये ताकि तुम सोने की तरह चमक उठो, कैसा भी, कोई भी जवाब पाने के लिए, समाधि पर आकर श्रीअरविन्द से पूछ लो और तुम्हें जवाब मिल जायेगा। न केवल तुम्हें उनका जवाब मिलेगा बल्कि उनके आशीर्वाद, उनकी शान्ति और उनकी प्रदीप्ति भी तुम प्राप्त कर लोगे। तुम उनके सर्व-शक्तिशाली प्रेम में निमग्न हो जाओगे, उससे धर पकड़े जाओगे। एक बार तुम स्वयं को उनके हवाले कर दो, और दुर्घटनाएं तुम्हारा बाल भी बांका न कर पायेंगी। तो ऐसा है उनका प्रभाव। वे उन सभी के सम्मुख स्वयं को प्रकट करते हैं जो सीधे हैं, सच्चे हैं, विनम्र हैं। वे यहां उपस्थित हैं, पूरी तरह से सचेतन, और वे जगत् की सभी क्रियाओं का सञ्चालन करते हैं।...

जानते हो, पहले, जब वे सशरीर उपस्थित थे, लोग कहा करते थे कि वे बड़ी दूर हैं, हम मनुष्यों से अलग-थलग, हमारी पहुंच के परे हैं और यह भी कि यहां के साधकों के क्रिया-कलाप के साथ उनका कोई वास्ता नहीं है। यह एकदम ठीक बात नहीं है, क्योंकि वास्तव में, संसार को उन्नत करने और उसे अतिमानसिक जगत् के आविर्भाव के लिए प्रस्तुत करने के अपने कार्य की बजाय वे रात पर रात जग कर, साधकों की ढेर की ढेर चिट्ठियों का जवाब लिखा करते थे। वे उनकी प्रगति का लेखा-जोखा रखने का कष्ट उठाते थे और साधकों की समस्याओं को सुलझाने में अपने-आपको उलझाये रखते थे। और साथ ही उन्होंने चीजों की इस तरह व्यवस्था कर दी थी कि साधकगण सीधा मेरे साथ सम्पर्क साध कर मेरे आशीर्वाद पाते एवं भौतिक क्षेत्र में व्यावहारिक तौर पर, और साथ ही साधना के लिए आन्तरिक रूप में मेरी सहायता पाते। मेरे द्वारा वे चेतना की ऊंचाइयों पर पहुंचने में समर्थ हो जाते जो उन्हें अतिमानस की ओर उठा ले जातीं और हर प्रकार की कठिनाई से वे मुक्त हो जाते। उस समय 'वे' चेतना के उन विभिन्न जगतों, विविध शक्तियों तथा असंख्य अवस्थाओं को न केवल जीतने बल्कि उन्हें अपने अधीन कर, सम्पूर्ण रूप से उन पर प्रभुत्व पाने में तल्लीन थे, जो अवस्थाएं हमारे महत् कार्य—अतिमानसिक खोज—के रास्ते में बाधा बन कर उसका विरोध कर रही थीं। इसी कारण रोजमर्रा के काम-काज मेरे हवाले कर दिये गये थे और साथ ही आश्रम की यह सारी व्यवस्था और उसके साथ साधकों की व्यक्तिगत प्रगति तथा

सामूहिक योग के प्रति उनके प्रयास का कार्यभार मुझ पर था। साधना के उस काल में स्वयं को लोगों के साथ व्यस्त रखने या उनकी शिकायतें सुनने के लिए उनके पास समय न था। लेकिन अब उन्होंने स्वयं को वैश्वभावापन्न बना लिया है, वे विस्तृत हो गये हैं, बहुत घनिष्ठ, बहुत निकटस्थ हो गये हैं। प्रत्येक के साथ उनका नाता जुड़ गया है, वे प्रत्येक के करीब हैं और हम पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, अतः हर एक उनके पास पहुंच सकता है।

यह अद्‌भुत है। उनकी उपस्थिति यहां धड़कती है, वह ठोस है, समाधि के चारों ओर है। और उनका प्रभाव सत्ता के केन्द्र में प्रवेश कर चेतना को आध्यात्मिक जीवन की ओर जगाता है। यहां तक कि नास्तिक भी, सद्‌भावनाविहीन व्यक्ति भी, जो उत्सुकता के कारण समाधि पर आते हैं, वे भी यहां से एक रहस्यमयी कीमिया द्वारा भौचक्के-से वापिस जाते हैं और साथ ही ले जाते हैं अपने साथ आन्तरिक शान्ति, क्योंकि समाधि पर 'वे' निरन्तर बरसाते हैं अपनी शान्ति और अपनी करुणा। जब लोग समाधि पर आते हैं तो इन्हीं चीजों से सराबोर हो जाते हैं। उनकी शक्ति और उनकी उपस्थिति से वह स्थान अकल्पनीय रूप से भरा हुआ है।

समाधि : ध्यान के लिए पवित्र स्थान

जब मैं समाधि की ओर देखती हूं कि वहां क्या हो रहा है तो मैं वहां चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश के इस स्तम्भ को देख कर आश्चर्य में पड़ जाती हूं जो ऊर्जा तथा रूपान्तरकारी शक्ति के स्पन्दन से बना है। वह इस तरह ऊपर उठता है *(श्रीमां हाथों से ऊपर उठने की मुद्रा करती हैं)* मानों समाधि की लम्बाई और चौड़ाई को लिये हुए भव्यता तथा प्रदीप्ति का एक खम्भा ऊपर उठ रहा हो। यह 'नया प्रकाश' है जो भौतिक रूप ले रहा है...

रात को, जब सब कुछ शान्त होता है, तो कुछ सत्ताएं आकर उन सब चीजों को बुहार जाती हैं जिन्हें लोग पीछे छोड़ जाते हैं; ये हैं—मिथ्यात्व, कामनाएं, व्यग्रता से भरी चिरौरियां, हर तरह की शिकायतें, दुर्भावना और रोग, साथ ही विरोधी शक्तियां—और वे इस स्थान को शान्तिमय और सुखद बना देती हैं। वे सारे वातावरण और परिवेश को अपने प्रेम से इतना पवित्र कर देती हैं कि 'उनकी' उपस्थिति वहां अनुभव की जा सकती

है।

यह ध्यान करने का पवित्र स्थल है, गपशप करने की जगह नहीं। 'वे' अपने महिमामय शरीर में यहां उपस्थित हैं, सारे जगत् को एक सूक्ष्म गति में सहारा दिये हुए हैं, 'अपनी' चेतना को क्रमशः अभिव्यक्त कर रहे हैं जो भागवत अवतरण के लिए आंशिक रूप में परदे के पीछे स्थित है।

हमारी दिव्य सम्भावना के लिए निश्चित आश्वासन

'वे' हमारे अन्दर की दिव्य सम्भावना के लिए हमें निश्चित आश्वासन देते हैं, यह वचन देते हैं कि यहां दिव्यत्व भागवत प्रकाश तथा भागवत शक्ति के साथ विकीरित और प्रकाशित होगा—सब 'भागवत अभिव्यक्ति' की ओर धीर-गभीर पगों से आगे की ओर बढ़ते चलेंगे। यही कारण है कि यहां का सारा वातावरण एक भागवत और उदात्त 'शक्ति' से सराबोर है, समझ रहे हो? 'वे' ही यहां हैं—भागवत शरीर में —स्वयं देवत्व में परिवर्तित, 'वे' हैं समस्त मानवजाति के प्रतिनिधि, वे, जिन्होंने स्वयं अपने प्रयास से, अपनी तपस्या से और उस साधना से—जो उन्होंने अपने शरीर पर की है—उसके द्वारा उन्होंने अपने शरीर को दिव्य रूप से भव्य बना दिया है। जो उपलब्धियां और अनुभूतियां उन्होंने प्राप्त कीं, इस यौगिक प्रयास के द्वारा उन्होंने अपने शरीर में जो कुछ सञ्चित किया, उससे उनका शरीर एक रूपान्तरकारी शक्ति से आवेशित है। वह आवेशित है, ऐसी ऊर्जस्वी शक्ति एवं प्रकाश से लबालब है जो उफन रहे हैं; यही शक्ति एवं प्रकाश सारे वातावरण को अपने आलिंगन में लिये हुए है। चारों तरफ, 'उनकी' ही उपस्थिति है। वह वातावरण इसलिए टिका हुआ है क्योंकि उसमें अतिमानसिक शक्ति है और उसमें कमी का कोई चिह्न नहीं दिखायी दे रहा, दिखायी दे नहीं सकता।

यही वह चीज है जिसे व्यक्ति तब आत्मसात् करते हैं जब वे समाधि का चक्कर लगाते हैं। बिना जाने ही वे उनके प्रेम से नहा उठते हैं और वे इस रहस्य को नहीं समझ पाते कि जब वे समाधि के पास आते हैं तो भिन्न क्यों हो जाते हैं। सचमुच आश्चर्यकर है यह! जब वे समाधि का स्पर्श करते हैं तो चकित हो जाते हैं क्योंकि वह शक्ति, जो चारों तरफ कार्यरत है, उनकी सभी तथाकथित धार्मिक भावनाओं को ढा देती है, स्वर्ग

के लिए दुहाई देने वाले विचारों को चूर-चूर कर देती है और उन्हें एक ऐसी 'वास्तविकता' के सामने ला खड़ा करती है जिसे वे समझ नहीं पाते। वे उस अद्वितीय 'सत्य' से भौचक्के रह जाते हैं जो यहां अभिव्यक्त है। जो उद्‌घाटित हैं वे द्रवित हो जाते हैं, और अपने-आपको फिर-फिर भरने के लिए लौट-लौट कर आते हैं ताकि वे उस परमा शक्ति को अपनी सांस के साथ अन्दर खींच सकें जो यहां के वातावरण में बसी हुई है। उनकी उपस्थिति इतनी ठोस और इतनी जीवन्त है—मानों एक सचेतन विशालता है जो इस वातावरण पर आधिपत्य रखती और उसे आलिंगन में भरे रहती है। मैं देखती हूं कि वह विशालता किस तरह ज्योतियों और रंगों में वहां विचरती है, वहां अकल्पनीय आनन्द विराजता है, पवित्रता तथा उपस्थिति की ऐसी भावना लहराती है जो करीब-करीब भौतिक आकार ले लेती है और वहां ऐसी मधुरता उपस्थित रहती है जो संसार के लिए अजानी है। मुझे प्रतीत होता है कि कोई ऐसा हृदय—जो एकनिष्ठ हो, भगवान् के लिए तीव्रता के साथ अभीप्सा करता हो—अगर वह समाधि के सम्मुख खड़े होकर, उनके 'परमानन्द' के सिवाय और किसी भी चीज की कामना न करे, तो वह हर्ष के ऐसे क्षेत्र में ले जाया जायेगा जो उन सभी परमानन्दों से कहीं अधिक महान् और उच्च होगा जिनका अनुभव सर्व-समर्थ स्वर्गों ने या धरती ने कभी किया हो।

'वे' कठिनाइयों को निरन्तर उखाड़ बाहर करते हैं

उनके शिष्य और वे लोग जो अभीप्सा करते हैं—जो श्रीअरविन्द के साथ अपनी चेतना को एक करने के लिए सचमुच अभीप्सा करते हैं—उन श्रीअरविन्द के साथ जो अपनी भव्य उपस्थिति से इस स्थान पर आधिपत्य रखते हैं—ऐसे व्यक्ति उनकी राजसी उपस्थिति की विशालता को उतने ही ठोस रूप में अनुभव करेंगे जैसे तुम इस समय मुझे देख रहे हो। और जो उनके साथ सम्पर्क साधना चाहते हैं, निश्चित रूप से 'उनके' उत्तर पा लेते हैं। सर्वसमर्थ 'वे' अपनी समस्त शक्ति के साथ उपस्थित हैं और परदे के पीछे से अखण्ड आग्रह और अकल्पनीय धीरज के साथ 'नयी सृष्टि' का सञ्चालन करते हैं; साथ ही वे दृढ़निश्चय के साथ, एक के बाद एक विजय प्राप्त करते हैं—पहले 'वे' मानवता की चेतना को अपने हाथ में

लेते हैं फिर उसे उसके सभी आयामों में रूपान्तरित करते हैं, यद्यपि वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि मानवता द्वारा रूपान्तरण में विरोध बहुत होंगे, लेकिन वे यह भी जानते हैं कि ये क्षणिक पतन ही समस्त मानवजाति को उसकी बाधाओं के पार ले जायेंगे और अन्त में मानवजाति अपनी गति में वैश्व बन कर 'उनके' प्रकाश की शान्ति में उभर आयेगी। और सबसे बढ़ कर, यह सब आध्यात्मिकता पर आधारित है, किन्हीं तथाकथित कृत्रिम-धार्मिक आन्दोलनों पर नहीं जिनके मूल में होती है मतान्धता, युद्ध और अनावश्यक कलह। तुम परिणाम देखते हो न... संसार मनुष्यों की क्रूरताओं से थक चुका है,—खून-खराबा होता रहता है, हिंसाएं आधिपत्य जमाये रखती हैं। हमने ऐसी बीभत्स विभीषिकाएं कभी नहीं देखीं। मनुष्य पशु बन गया है, पशु से भी बदतर!

... जब तक मनुष्य अपनी चेतना को बदलने की कोशिश नहीं करेगा... वह ऐसी अन्धी गली में ही भटकता रहेगा जहां से बाहर निकलना उसके लिए असम्भव होगा। न कोई मनुष्य, न ही व्यक्तियों का समुदाय– भले उनके अन्दर चाहे जितनी अभूतपूर्व क्षमताएं क्यों न हों, भगवान् और विरोधी शक्तियों के बीच की खाई को नहीं पाट सकते। यह अज्ञान है जिसने मनुष्य को इस अवस्था में ला खड़ा किया है। लेकिन चिन्ता मत करो। 'वे' जिन्हें यह भार सौंपा गया है, 'वे' जो उत्तरदायी हैं, मनुष्य को 'नयी सृष्टि' की देहली पर पहुंचाने के लिए कार्य कर रहे हैं; 'वे' कठिनाइयों और मुसीबतों को निरन्तर जड़ से उखाड़ रहे हैं, मनुष्य को उज्ज्वल भविष्य की ओर ले चल रहे हैं। केवल 'वे' ही मनुष्य को इस बीमारी से छुटकारा दिला सकते हैं क्योंकि 'वे' ही हमारे अस्तित्व के स्वामी हैं। विश्वास रखो और सब कुछ ठीक हो जायेगा। क्रम-विकास के सर्पिल घेरे का, उसके पार्थिव जीवन के चक्करों का यह सम्भवतः निम्नतम बिन्दु है। लेकिन शीघ्र ही हम प्रकाश देखेंगे, एक बड़े परिवर्तन की आशा लगाये बैठे हैं हम, 'उनकी उपस्थिति' की निश्चिति संजोये हुए हैं, केवल वही पृथ्वी पर भगवान् के राज्य को उतार सकती और प्रतिष्ठित कर सकती है।

'Blessings of the Grace', पृ. ११९-१२५

अमरता तथा मृत्युविहीन अवस्था

अमरता तथा मृत्युविहीन अवस्था में भेद है। श्रीअरविन्द ने इसका वर्णन 'सावित्री' में बहुत अच्छी तरह किया है।

मृत्युविहीन अवस्था वह अवस्था है जिसकी कल्पना हम इस रूप में कर सकते हैं कि भविष्य का मनुष्य ऐसा ही होगा : यह सतत पुनर्जन्म है। मृत्यु के साथ पीछे लुढ़कने और नमनीय होने तथा वैश्व गति के अनुकूल बनने में असमर्थ होकर मृत्यु में बिखरने की बजाय, शरीर को 'भविष्य की ओर' ले जाया जायेगा।

एक तत्त्व अटल रहता है : हर एक प्रकार के कोषाणु के लिए, तत्त्वों की आन्तरिक व्यवस्था भिन्न होती है, और यही उनके सारतत्त्व में भेद पैदा करता है। उसी तरह सम्भवतः, प्रत्येक व्यक्ति का अपने शरीर के कोषाणुओं की व्यवस्था करने का भिन्न तरीका होता है, और यही विशेष तरीका समस्त बाहरी परिवर्तनों के बावजूद बना रहता है। बाकी सब मृत्यु के साथ क्षीण हो जाता है, पुनर्जन्म के समय फिर से बनता है, जब हम भविष्य में छलांग लगायेंगे तो मृत्यु में पीछे ढह जाने की बजाय हम सतत अभीप्सा के द्वारा भागवत 'सत्य' की वर्धनशील गति का अनुसरण करेंगे।

लेकिन इसके लिए, शरीर को—शरीर की चेतना को—पहले स्वयं को विस्तृत करना सीखना होगा। यह अनिवार्य है, अन्यथा, अतिमानसिक प्रकाश के दबाव तले सभी कोषाणु उबलते हुए पानी की न्याईं बन जायेंगे।

सामान्यतः होता यह है कि जब शरीर अभीप्सा की अपनी अधिकतम तीव्रता या प्रेम के परमानन्द के छोर पर पहुंच जाता है तो वह उसे अपने अन्दर समाये रखने में असमर्थ हो जाता है। वह चपटा, निस्पन्द हो जाता है। वह पीछे गिर जाता है। फिर जब चीजें पुनः स्थिर हो जाती हैं, तुम एक नये स्पन्दन से अधिक समृद्ध हो जाते हो, और सब कुछ फिर से अपने रास्ते चलने लगता है। अतः, तुम्हें अपने-आपको विशाल बनाना होगा ताकि तुम दृढ़-निर्भीक होकर अतिमानसिक शक्ति की तीव्रता को सह सकना सीख लो, हमेशा आगे बढ़ो, शरीर की जर्जरता में वापिस गिर जाने की बजाय हमेशा भागवत 'सत्य' की ओर उठते रहो।...

एक शिष्य के साथ वार्तालाप — २५ नवम्बर १९५९

'मैं यहीं हूं, मैं यहीं हूं'

(श्रीअरविन्द के प्रयाण के बाद उनके एक घनिष्ठ शिष्य श्री नीरदवरण के लेख के कुछ अंश)

महान् त्याग के अन्तिम क्षण

श्रीअरविन्द अब अपने परिवेश से स्वयं को निवर्तित करते प्रतीत हो रहे थे... यह स्पष्ट था कि उन्हें शारीरिक कष्टों की चिन्ता की अपेक्षा गहरी डुबकी अधिक उपयोगी लगी चाहे वह उनके जिस किसी प्रयोजन के लिए भी हो। लगता था कि उन्होंने शरीर को अपनी क्रिया और प्रतिक्रिया करने के लिए स्वीकृति दे दी थी जब कि वे स्वयं आन्तरिक रूप से वैश्व महत्त्व के अधिक रहस्यमय कार्य में लगे रहते थे। जिस शरीर को उन्होंने धारण किया था उसने इनकी अच्छी तरह सेवा की थी, तथा जैसा कि श्रीमां ने कहा, इसने हमारे लिए सब कुछ झेला है, सहन किया है, सब कुछ किया है और पाया है। अब यदि यह उनकी गतियों की देवतुल्य धारा के लिए बाधा बन गया है तब वे उसे परिवर्तित क्यों नहीं कर देते? जिस प्रकार उन्होंने अपनी शारीरिक अक्षमता को अपने कार्य में कष्ट पहुंचाने नहीं दिया और शुरू से अन्त तक वही ज्वाला और आवेग बनाये रखा, उसी तरह कार्यपूर्ति के पश्चात् उन्होंने शरीर के कष्ट को अपने गुह्य उदात्त उद्देश्य की पूर्ति में अड़चन बनने नहीं दिया। इस भयंकर असमर्थता से भी उन्होंने अधिकतम लाभ उठाया। उनका स्वभाव परिस्थितियों के सामने झुक जाना कभी नहीं रहा, चाहे वे कितनी भी विरोधी क्यों न रही हों। यदि उन्हें एक मोर्चे पर झुकना भी पड़ता तो दूसरे पर पूरी क्षतिपूर्ति वे प्राप्त कर लेते थे। यदि उन्हें पहले से मालूम भी रहता कि हार और विफलता निश्चित है, फिर भी यह तथ्य उन्हें कार्य करने और अन्त तक संघर्ष करने से रोक नहीं सकता था। "यदि मुझे मालूम भी हो कि मेरा 'मिशन' विफल हो जायेगा, तब भी मैं अन्तिम क्षण तक कार्य करता रहूंगा", ये शब्द उन्होंने एक पत्र में लिखे थे। गीता का *निष्काम कर्म* उनका आदर्श-वाक्य था।...

यह ४ दिसम्बर का स्मरणीय दिन था, स्वर्णिम अक्षरों में सदा के लिए लिखित दिनांक। श्रीअरविन्द गहराई से पूरी तरह निकल आये और उन्होंने बैठने की इच्छा प्रकट की। हमलोगों की आपत्ति के बावजूद उन्होंने आग्रह

किया। कुछ समय के बाद हमने देखा कि सभी कष्टदायक लक्षण जादू की तरह गायब हो गये थे और वे एक बार पुनः एक सामान्य स्वस्थ व्यक्ति थे। फिर वे कुर्सी पर बैठे। यह परिवर्तन इतना एकाएक और अप्रत्याशित था कि हम सबने आनन्द और अचरज से एक दूसरे को देखा। "अन्ततोगत्वा हमारी प्रार्थना सुन ली गयी है!" हमारे भक्तिभरे शान्त हृदय में यही भाव उमड़ रहा था। यह अविश्वसनीय था! अब हमलोगों ने अपने प्रश्न को दोहराने का साहस किया : "रोग से मुक्ति के लिए क्या आप अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर रहे हैं?" "नहीं!" एक प्रघातदायक उत्तर आया। हम सबको अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, इसलिए अपने अविश्वास की पुष्टि के लिए हमने पुनः पूछा। अब भ्रान्ति बनाये रखने का कोई आधार न था। जो हम सबने सुना वह तलवार की धार के समान चिकना और तेज था। तब हमने साहसिक सवाल किया : "क्यों नहीं? यदि आप शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे तब रोग से मुक्ति कैसे मिलेगी?" इसका उन्होंने केवल एक रहस्यमय उत्तर दिया, "समझा नहीं सकता; तुम नहीं समझोगे।"

यहां अन्ततः रहस्य की कुञ्जी मिली! इसीलिए रोग एक-एक कदम कर आगे बढ़ता गया, नीचे उतरने के मार्ग पर तीन स्पष्ट चरणों में : 'सावित्री' का समापन, दर्शन तथा विद्यालय का वार्षिकोत्सव—प्रत्येक चरण में गहरी होती हुई निवर्तित स्थिति। अन्तिम चरण में श्रीमां ने टिप्पणी की, "जब भी मैं वहां होती, मैं उन्हें अतिमानसिक ज्योति को नीचे खींचते हुए देखती थी।" इससे यह स्पष्ट था कि श्रीअरविन्द किस कार्य में व्यस्त थे। उन्होंने अपनी दृष्टि और एकाग्रता किसी और चीज पर केन्द्रित कर दी थी जो उनके दृष्टिकोण से शारीरिक पीड़ाओं पर ध्यान देने की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण रही होगी। परन्तु हमारे अन्दर न अन्तर्दृष्टि थी न बोध-शक्ति, इसलिए हमने सोचा कि ज्योति का अवतरण हमारे हृदय की कामना को पूरा करेगा।... एक घण्टे के पश्चात् वे अपने पलंग पर वापस आ गये और इसके साथ ही पूरी तरह लौट आये रोग के सभी चिह्न तथा लक्षण। इस अल्पकालिक विश्राम ने मानों उन्हें आगे बढ़ती काली छाया के साथ एक और भिड़न्त का समय दे दिया जो उनके कार्य पर असमय परदा डालने का प्रयास कर रही थी। निर्णायक क्षण से आधा घण्टा पहले उन्होंने कुछ जल पिया और सबके ऊपर करुणा और सेवाओं के लिए कृतज्ञता-

भरी अन्तिम दृष्टि डाली, फिर आन्तरिक गहराई में अन्तिम छलांग लगा ली।... दूसरे दिन मुंह-अंधेरे ही चारों ओर खबर फैल गयी। शिष्यों की प्रतिक्रिया का वर्णन करने से अच्छा होगा उसकी कल्पना कर लेना। रात्रि के सन्नाटे में एक-एक कर वे आते गये और जिस दृश्य को पहले कभी किसी ने नहीं देखा था वह देखने के लिए स्वर्ग की सीढ़ियां चढ़ने लगे। उन्होंने मृत्यु नहीं, मृतोत्थान नहीं, न निर्वाण में निवर्तन देखा बल्कि देखी एक भव्य विश्रान्ति, शक्ति से स्पन्दित होती मृत्यु, प्रत्येक अंग में ज्योति और सुषमा, मानों नृपों के नृप की देह में मृत्यु ने अमरत्व प्राप्त कर लिया हो। जड़-द्रव्य की कसौटी पर सत्य का जीवन्त प्रतिदान, यह अब शरीर न था, बल्कि था एक स्वर्णिम आवरण जो उस सत्य को अर्ध-आच्छादित करता था और अर्ध-उद्घाटित। जिन्हें अन्तर्दृष्टि प्राप्त थी उन्होंने सत्य का अनुभव कर लिया था और जिनमें अन्तर-श्रवण की शक्ति थी उन्होंने अपने हृदय की प्रशान्त गुहा में यह भेदक घोषणा सुनी थी, **"मैं यहीं हूं!"**

उसी जाग्रत् चेतना में हम अपने गुरु द्वारा निर्धारित लक्ष्य की ओर आगे बढ़ रहे हैं जिसके लिए उन्होंने अन्तिम श्वास तक कार्य किया और लक्ष्य की सिद्धि तक कार्य करने का वचन दिया है। परम सृष्टिकर्त्री तथा उस लक्ष्य की सिद्धि को चरितार्थ करने वाली श्रीमां हमारी मार्गदर्शिका तथा भगवती हैं। श्रीअरविन्द की गुह्य तथा आध्यात्मिक अक्षय उपलब्धियों तथा अतिमानसिक ज्योति से सम्पन्न, जो स्वतः ही उन्हें हस्तान्तरित कर दी गयी थीं—वे हमें उस सांचे और आकृति में गढ़ रही हैं जिसे भावी मानवता के रूप में श्रीअरविन्द ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा था। उस महान् घटना के बाद जो कोई आश्रम में आया, वह अवश्य ही विजय-प्राप्ति के उस संकल्प से प्रभावित हुआ जिसे उनके बलिदान ने प्रत्येक के हृदय में उत्पन्न कर दिया था। समाधि के पर्यावरण से सहस्रों ज्वालाएं उठती प्रतीत होती हैं जो हमारी आत्मा में सदा पुनर्यौवनकारी अग्नि के समान प्रज्वलित हैं, जब कि श्रीमां की सत्ता तथा शरीर के साथ विलयित श्रीअरविन्द की उपस्थिति आवरण के समान यहां के सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त है। कोई भी उनकी उपस्थिति को देख सकता है, उनके पदचापों को, उनके लयात्मक स्वर को सुन सकता है, सदा सतर्क, भौतिक शरीर के भार से मुक्त। एक दिन बलिदान फल देगा, जो उन्होंने 'सावित्री' में

चित्रित किया है वह सत्य सिद्ध होगा। क्योंकि, अन्ततः, 'सावित्री' क्या है यदि वह श्रीमां और श्रीअरविन्द की आन्तरिक जीवन-वृत्तान्त-कथा नहीं है। उन्होंने महाकाव्य में जो चित्रित किया है वही सच्चाई के साथ विश्व-मंच पर अभिनीत किया गया है। उस विस्मयकारी नाटक के प्रथम खण्ड पर यवनिका-पात हो चुका है तथा शेष दृश्य परदे के पीछे खेला जा रहा है। अन्तिम सर्वोच्च शत्रु के साथ युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ है; भले पार्थिव रणक्षेत्र पर यह प्रतीयमानतः विफल रहा है, लेकिन गुह्य लोकों में भयानक रूप में अभी भी चल रहा है। जब द्वन्द्व-युद्ध के बाद परदा उठाया जायेगा तब हम 'बुक ऑफ़ डेथ'—मृत्यु-खण्ड—का सुरीला गायन सुनेंगे, तब धरती के मंच पर 'एपिलॉग' अर्थात् भरतवाक्य या उपसंहार का मूर्त रूप देखेंगे, और विश्व-भर में प्रतिध्वनित और पुनः प्रतिध्वनित होगा विजय का जीवन्त भावप्रवण उद्घोष : **"मैं यहीं हूं, मैं यहीं हूं!"**

मधुर मां, पहले मेरी आदत थी कि सोने से पहले 'सावित्री' या आपकी कोई पुस्तक पढ़ लिया करती थी। लेकिन अब मेरी वह आदत छूट गयी है; अब मैं नियमित रूप से समाधि पर भी नहीं जाती। मैं इन चीजों का सच्चा मूल्य नहीं समझती। क्या हमें ये चीजें नियमित रूप से करनी चाहियें या केवल तभी जब इन्हें करने की इच्छा हो? हमें ये चीजें क्यों और कैसे करनी चाहियें?

व्यक्ति 'सावित्री' पढ़ता है अपनी बुद्धि को विकसित करने और गभीरतर चीजों को समझने के लिए।

व्यक्ति समाधि पर एकाग्र होता है भक्ति में प्रगति करने और अपने-आपको श्रीअरविन्द के साथ सम्पर्क में लाने के लिए ताकि उनकी सहायता पा सके। अगर तुम्हारे लिए इन चीजों का कोई मूल्य है तो तुम्हें इन्हें नियमित रूप से करना चाहिये क्योंकि अचेतना का प्रमाद तुम्हें यह करने से रोकता है।

तुम आध्यात्मिक और सचेतन जीवन के लिए जन्मी हो लेकिन, शायद उसे चरितार्थ करने के संकल्प के लिए अभी तुम बहुत छोटी हो।

आशीर्वाद। —श्रीमां

समाधि

अतिमानस के अग्रदूत हैं
चिरनिद्रा में लीन यहां,
ऐसा पावन तीर्थ धरा पर
मिल सकता है और कहां!
देश, धर्म औ' जाति-बन्ध को
भूल यहां जन आते हैं,
अपना मस्तक टेक यहां पर
अद्‌भुत सुख वे पाते हैं।
मानव की क्या बात यहां पर
सेवा में है लीन वृक्ष भी,
ऐसा है परिवेश, निकटतर—
आ जाता है स्वयं लक्ष्य भी।
चेतन मन की ऊर्ध्व तरंगें
यहां करे अनुभव कोई,
विगलित होकर अहं, शान्त हो
पा जाये सत्ता सोई।
यह समाधि है उनकी जिनके
ऋण से मुक्ति असम्भव है,
यह प्रकाश की विजय, तिमिर का—
निस्सन्देह पराभव है।
मिथ्या पर है विजय सत्य की
और अशिव पर शिव की है,
सुन्दर जेता बना बिहंसता
महिमा यह इस भू की है।
दृष्टि मूंद कर जो दिखता है
दर्शन वही परम का है,
इस समाधि को नमस्कार है
दर्शन यही नमन का है।

—सुरेशचन्द्र त्यागी

बुढ़ापा और मृत्यु

यदि व्यक्ति यह अनुभव करे कि उसका इस जीवन का कार्य समाप्त हो गया है और अब भेंट देने के लिए उसके पास कुछ नहीं बचा तो क्या एक लक्ष्यहीन अस्तित्व को घसीटने की अपेक्षा मर कर दुबारा जन्म लेना अधिक अच्छा नहीं है?

यह वह प्रश्न है जो एक असन्तुष्ट अहं अपने-आपसे उस समय पूछता है जब उसे लगता है कि वस्तुएं उसकी इच्छानुसार नहीं चल रहीं।

किन्तु जो व्यक्ति भगवान् का है और सत्य में ही निवास करना चाहता है वह यह जानता है कि भगवान् उसे पृथ्वी पर तब तक रखेंगे जब तक वह उनकी दृष्टि में पृथ्वी पर उपयोगी होगा, जब पृथ्वी पर उसके करने लायक कुछ न रहेगा तो उसे हटा देंगे। अतएव, यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता। और तब व्यक्ति भगवान् की सर्वोच्च बुद्धिमत्ता की निश्चयता में शान्तिपूर्वक निवास करेगा।

आपने कल लिखा था : "किन्तु जो व्यक्ति भगवान् का है...।" प्रत्येक प्राणी, चाहे वह कोई भी हो, क्या भगवान् का नहीं है?

जब मैं कहती हूं : "जो व्यक्ति भगवान् का है", तो मैं उस व्यक्ति की बात कहती हूं जिसने अपने अहं से मुक्ति पा ली है, जो सदा भगवान् के प्रति सचेतन रहता है, जिसकी कोई व्यक्तिगत इच्छा नहीं है, जो केवल भागवत प्रेरणा से ही कार्य करता है और जिसका इसके सिवाय कोई और लक्ष्य नहीं है कि वह वही करे जो भगवान् उससे करवाना चाहते हैं।

मुझे नहीं लगता कि ऐसे लोग अधिक हैं जो इस अवस्था में हों। और यह भी निश्चित है कि वे इस बात की कभी चिन्ता नहीं करेंगे कि उनका जीवन पृथ्वी पर उपयोगी है या नहीं क्योंकि वे केवल भगवान् के लिए तथा उन्हीं के द्वारा जीवन धारण करते हैं, उनका कोई वैयक्तिक जीवन नहीं रह जाता।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ३७१-७२

जब तक कि हम शरीर में हैं, चाहे उसकी कितनी भी उमर और कठिनाइयां क्यों न हों, यह निश्चित है कि हमें इसमें कुछ करना या सीखना है, और यह विश्वास सभी प्रतिकूलताओं का सामना करने के लिए आवश्यक बल देता है।...

तुम्हें उतावली में न होना चाहिये और प्रस्थान की जल्दी न करनी चाहिये, चाहे वह शाश्वत विश्राम या शून्यता के परमानन्द के लिए ही क्यों न हो। जब तक हम शरीर में हैं तब तक निःसन्देह हमें कुछ करना या सीखना होता है।

*

मृत्यु का यह सुझाव 'अहं' से आता है जब वह यह अनुभव करता है कि उसे जल्दी ही पद छोड़ना पड़ेगा। शान्त और निर्भीक रहो। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

*

तुम सम्पूर्ण त्याग की बात कर रहे हो, लेकिन शरीर को छोड़ना सम्पूर्ण त्याग **नहीं** है। सच्चा और पूर्ण त्याग है अहं का त्याग जो कहीं अधिक दुःसाध्य प्रयास है। अगर तुमने अपने अहं को न त्यागा हो तो शरीर छोड़ देने से तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी।

*

मृत्यु के बारे में तुम जैसा सोचते हो वह वैसी बिलकुल नहीं है। तुम मृत्यु से अचेत विश्राम की निरपेक्ष शान्ति की आशा रखते हो। लेकिन उस विश्राम को पाने के लिए तुम्हें उसके लिए तैयारी करनी होगी।

जब किसी की मृत्यु होती है तो वह केवल अपना शरीर खोता है और साथ-ही-साथ जड़-भौतिक जगत् पर क्रिया और उसके साथ सम्बन्ध की सम्भावनाओं को भी खोता है। लेकिन वह सब जो प्राण जगत् का है, वह जड़-भौतिक तत्त्व के साथ विलीन नहीं होता; उसकी सभी कामनाएं, आसक्तियां, लालसाएं कुण्ठा और निराशा के भाव के साथ डटी रहती हैं, और यह सब कुछ उसे प्रत्याशित शान्ति पाने से रोकता है। शान्त और

घटनाविहीन मृत्यु के आनन्द के लिए तुम्हें उसकी तैयारी करनी होगी। और एकमात्र प्रभावकारी तैयारी है, कामनाओं का विलयन।

जब तक हमारा शरीर है हमें क्रिया करनी पड़ती है, काम करना पड़ता है, कुछ-न-कुछ करना ही पड़ता है लेकिन अगर परिणाम की आशा के बिना या यह चाहे बिना कि चीज इस तरह हो या उस तरह हो, हम चीजों को यूं ही करते चलें क्योंकि उन्हें करना है, तो हम क्रमशः निर्लिप्त होते जायेंगे और इस तरह अपने-आपको शान्तिपूर्ण मृत्यु के लिए तैयार कर सकेंगे।

*

अगर तुम मृत्यु से बच निकलना चाहते हो तो तुम्हें अपने-आपको किसी भी नश्वर वस्तु से नहीं बांधना चाहिये।

तुम केवल उसी को जीत सकते हो जिससे तुम भय नहीं खाते, और जो मृत्यु से भय खाता है वह पहले से ही मृत्यु से पराजित हो चुका है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १३१-३२

चूंकि मेरी प्रकृति कमजोर है इसलिए साधारण चीजों को त्यागना कठिन हो जाता है। लेकिन, यह निश्चित है कि मैं केवल आपको ही चाहता हूं। अगर आप न हों तो मृत्यु—और कुछ नहीं।

मरने का कोई प्रश्न ही नहीं है। शरीर को छोड़ना कोई हल नहीं है। तुम अपनी कामनाओं में ही रहते हो और यह ज्यादा खराब है। यह बहुत ज्यादा समझदारी की और सच्ची बात है कि यह समझ कर कामनाओं को मर जाने दो कि वे कितनी मूर्खताभरी और व्यर्थ हैं।

चूंकि तुम भागवत जीवन को इतना अधिक चाहते हो इसलिए तुम्हें असफलता से डरना नहीं चाहिये, क्योंकि सच्ची और सतत अभीप्सा हमेशा पूरी होती है।

अपनी कमजोरियों को जीतने का दृढ़ निश्चय कर लो और तुम देखोगे कि यह इतना मुश्किल नहीं है जितना दीखता है। बाधाओं को पार करने के लिए मेरी शक्ति तुम्हारे साथ है और मेरे आशीर्वाद भी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. १३७

दो साधकों के शरीर-त्याग पर श्रीमां का वक्तव्य

(अम्बालाल पुराणी के बारे में, जिन्होंने ११ दिसम्बर, १९६५ को शरीर छोड़ा)

उसका उच्चतर बौद्धिक भाग श्रीअरविन्द के पास चला गया और उनमें मिल गया।

उसका चैत्य मेरे साथ है, और वह बहुत प्रसन्न और शान्त है।

उसका प्राण अब भी उन लोगों की सहायता कर रहा है जो उसकी सहायता चाहते हैं।

५ मार्च, १९६६

*

(पवित्र के बारे में, जो एक फ़्रेंच शिष्य थे, जिन्होंने १६ मई, १९६९ को शरीर छोड़ा)

उस रात मुझे जो अनुभूति हुई वह बहुत रोचक थी। मेरे जीवन में ऐसा कभी नहीं हुआ था। यह उस दिन से पहले की रात थी जब उसने शरीर छोड़ा था। नौ बजे थे। मैंने अनुभव किया कि वह अपने को विलग कर रहा है, एक असाधारण तरीके से पीछे हट रहा है। वह अपने-आपसे बाहर निकल कर, अपने को समेट कर मेरे अन्दर उंड़ेल रहा था। वह सचेतन रूप से और सोच-समझ कर केन्द्रित संकल्प की पूरी शक्ति के साथ बाहर आ रहा था। वह बिना रुके, अनवरत घण्टों यह करता रहा। यह काम लगभग एक बजे खतम हुआ। मैंने घड़ी देखी थी।

किसी भी समय कोई ढील या व्याघात या विराम न था। सारे समय बिना रुके, शक्ति में जरा भी कमी आये बिना, एक-सा स्थिर सतत प्रवाह रहा। जरा भी कम न होने वाली कितनी केन्द्रित धारा थी वह। जब तक वह पूरी तरह मेरे अन्दर समा नहीं गया तब तक वह क्रिया चलती रही मानों वह अपने शरीर की अन्तिम बूंद तक को दे देना चाहता था। मैं कहती हूं, यह अद्‌भुत था—मैंने ऐसी चीज का कभी अनुभव न किया था।

जब प्रवाह बन्द हुआ तो शरीर में बहुत ही कम रह गया था : डॉक्टरों द्वारा शरीर को मृत घोषित कर देने के बहुत बाद तक मैंने शरीर को बहुत देर तक, उतनी देर तक रहने दिया जितनी देर तक काम जारी रहने के लिए जरूरी था।

वह जीवन में जैसा था, उस हिसाब से वह यह न कर सकता था, मैंने उससे इसकी आशा नहीं की थी। शायद उसका कोई पूर्वजन्म क्रियाशील था और वह यह कर पाया। अधिकतर योगी, बड़े-से-बड़े योगी भी ऐसा न कर पाते। वह यहां मेरे अन्दर है, पूरी तरह जाग्रत्, और तुम लोग जो कर रहे हो उसे विनोद की दृष्टि से देख रहा है। वह मेरे अन्दर पूरी तरह समा गया है, यानी वह मेरे अन्दर निवास करता है, विलीन नहीं हुआ है : उसका व्यक्तित्व अक्षुण्ण है। अमृत (एक अन्य शिष्य) उससे भिन्न है। वह बाहर है, तुममें से एक, तुम घूमने-फिरने वालों में से एक है। हां, कभी जब वह आराम करना, विश्राम लेना चाहता है, तो वह आता है और यहां निवास करता है। एक विलक्षण कहानी है यह। पवित्र ने बहुत बड़ा और दुःसाध्य काम किया है।

२५ मई, १९६९ —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. १९४-९५

पुनर्जन्म में बाहरी सत्ता, जो माता-पिता, परिवेश और परिस्थितियों के द्वारा बनती है—मन, प्राण और भौतिक–का दुबारा जन्म नही होता : केवल चैत्य सत्ता ही एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है। अतः यह तर्कसंगत है कि न मानसिक और न ही प्राणिक सत्ता पूर्व जन्मों को याद कर सकती है, न ही इस या उस व्यक्ति के चरित्र या जीवन की पद्धति में अपने-आपको पहचान सकती है। केवल चैत्य सत्ता ही याद रख सकती है; और अपनी चैत्य सत्ता के प्रति सचेतन होकर ही हम अपने पिछले जन्मों के बारे में ठीक-ठीक जान सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, हम जो बन चुके हैं उसकी अपेक्षा हम जो बनना चाहते हैं उस पर अपनी एकाग्रता स्थिर करना हमारे लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

२ अप्रैल, १९३५

श्रीमां का अन्तर्दर्शन (२)

मैं सो गयी थी और अब मैं जाग उठी हूं।

मैं तेजी से पूर्व की ओर यात्रा कर रही हूं। मुझे एक छोटा-सा बैंगनी बादल लिये जा रहा है। वह मुझे पूरी तरह ढके हुए है और रास्ते में कुछ भी नहीं देखने देता।

कुछ ही समय के बाद मुझे लगता है कि मुझे धरती पर धीरे से रख दिया गया है और बादल पीछे हट गया है। मैं एक ऊंची सफेद दीवार के पास खड़ी हूं। मैं उस पर नजर डालती हूं तो लगता है कि दीवार पर चुपके-चुपके छायाएं रेंगती जा रही हैं। एक के बाद एक मनुष्य कुछ दूरी पर चले जा रहे हैं मानों वे नहीं चाहते कि कोई उन्हें देखे। वे लम्बा बैंगनी चोगा पहने हैं। वे सिर पर गोल-गोल टोप ओढ़े हुए हैं जो इतने नीचे तक आते हैं कि उनका चेहरा लगभग पूरी तरह ढक जाता है। वे एक के बाद एक, दीवार के एक छोटे से दरवाजे में गायब हो जाते हैं। सबके लिए अदृश्य होकर, सावधानी के साथ, यह जानने के लिए कि वे कहां जा रहे हैं, मैं उनके पीछे हो ली।

एक छोटे से खाली सफेद कमरे में से गुजर कर मैं अपने-आपको मेहराबों से घिरे एक ऐसे आंगन में पाती हूं जिसमें सन्तरे के पेड़ लगे हैं जिन पर सुन्दर सुनहरे फल लदे हैं। आंगन के बीचोबीच फव्वारे के साथ गहरी नीली, हरी और सफेद पच्चीकारीवाला हौज है, जिसमें से जल की पतली सी धार निकल रही है। फव्वारे की कलकल ही एकमात्र ध्वनि है जो वहां की नीरवता को तोड़ रही है क्योंकि आंगन एकदम सुनसान है। मैं उसे लांघ कर दो और कमरों में से होकर निकलती हूं जो समान रूप से सूने हैं। अन्त में मैं एक ज़ीने पर जा पहुंचती हूं और उस पर चढ़ कर एक चौकोर छत पर पहुंच जाती हूं।

एक कोने में मैं छोटी-छोटी सुनहरी गतिशील चिनगारियों से भरे भव्य किरमिज़ी प्रभामण्डल से आधे ढके एक पुरुष को गद्दे पर लेटा देखती हूं। पुरुष उठता है। वह सुदर्शन वृद्ध है। बैंगनी टोपी के नीचे दीखने वाले उनके बाल और उनकी दाढ़ी हिमश्वेत हैं; उनकी ठवन उदात्त और गरिमापूर्ण है। वे गहरा बैंगनी जुब्बा पहने हैं जिस पर किरमिज़ी पेटी कसी है। उनके

हाथ में एक सुनहरी कैंची है। लगता है वे किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

और जब मैं इन वृद्ध को ध्यान से देख रही थी तो मैंने जिन आदमियों को दीवार के साथ रेंगते देखा था, वे एक एक करके प्रवेश करते हैं। वे चुपचाप अपने-आपको छत के किनारे पर गोल घेरे में व्यवस्थित कर लेते हैं। उनके पीछे दूसरे सफेद वेशधारी आकर पहले आने वालों के आगे खड़े हो जाते हैं।

सब निश्चल हैं। सब मौन हैं। उनमें से एक जो उनका नेता मालूम होता है, ज़ीने की ओर मुंह करके बहुत गम्भीर खड़ा है। धीरे-धीरे हवा में एक कोमल चमक भर जाती है जो निश्चल शरीरों पर अपना प्रकाश बरसाती है। जैसे ही मैं इस प्रकाश का मूल स्रोत जानने के लिए मुड़ती हूं, मैं लगभग चौदह वर्ष के एक लड़के को छत की ओर जाने वाले ज़ीने पर चढ़ते हुए देखती हूं। वह एक सुन्दर शुभ्र चमक से घिरा है जिसमें सतरंगी झलकें दिखायी देती हैं। उसके कोमल सुनहरे केश सुगढ़ छल्ले बनाते हुए उसके कंधों पर लहरा रहे हैं। उसका रंग गोरा और सुकुमार है, उसकी लम्बी बरौनियां गुलाबी गालों पर टिकी हैं, क्योंकि उसकी आंखें नीचे झुकी हैं। वह हलका आसमानी जुब्बा पहने है जिस पर सफेद रेशमी कमरबन्द कसा है। उसके पैरों में जूते हैं। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता है और वृद्ध से एक कदम दूरी पर निश्चल खड़ा होकर, सिर झुका कर मौन अभिवादन करता है। तब वृद्ध गहरी मृदु वाणी में बोलते हैं, लेकिन वे मेरे लिए अजानी भाषा में बोलते हैं और मैं समझ नहीं पाती...

मैं सो गयी और अब मैं वृद्ध के शब्दों का अर्थ समझ सकती हूं। वे बच्चे से कहते हैं, "तुम्हें जो काम सौंपा गया है, जिसे तुमने स्वेच्छा से स्वीकार किया है, उसे तुम अब पूरा करने वाले हो। मैंने तुम्हें जो आदेश दिये थे, उनके अनुसार तुम उसे बिना भय और बिना दुर्बलता के पूरा करने वाले हो। तुम जानते हो कि हम एक हैं। तुम्हारे लिए न तो हमारे प्रेम की और न संरक्षण की कभी कमी होगी। तुम अभी जिस कार्य को सिद्ध करने वाले हो उसकी महत्ता और उसके विस्तार से और उन फन्दों और संकटों से भी परिचित हो जो निःसन्देह तुम्हारे रास्ते में आयेंगे; लेकिन हृदय मजबूत रखो। संघर्ष चाहे दुःसाध्य हो, पर विजय निश्चित है। तुम पश्चिम की ओर चलते चलो, मेरे बालक। हमारे उच्चतम आशीर्वाद

तुम्हारे साथ हों।"

ये शब्द कहते हुए वे सामने झुक कर तरुण के शुभ्र ललाट पर एक गहरा चुम्बन अंकित करते हैं। फिर सुनहरी कैंची से उसकी एक सुन्दर घुंघराली लट काट कर अपने चोगे के अन्दर डाल देते हैं।

तब बिना किसी शब्द या संकेत के, बालक धीरे-धीरे गम्भीरता से मुड़ता है और छत की ओर जाने वाले ज़ीने पर से उतर जाता है। मैं उसके पीछे जाती हूं और उसे मकान छोड़ कर तेजी से दीवार के समीप से जाते हुए देखती हूं। उसका सिर उन्नत है, वह सीधा आगे की ओर देख रहा है।

अचानक मैं अपने-आपको फिर से बादल से घिरा पाती हूं जो मेरी नजरों से सब कुछ छिपा कर मुझे ले जाता है। वह बस एक बार ही छंटता है और मुझे आश्चर्य के साथ-साथ एक बड़ी नदी को देखने देता है जिसके जल ज्योत्स्ना में बहती हुई चांदी जैसे हैं, जिसके किनारों पर शानदार प्रचुर हरीतिमा फैली हुई है। यहां सब कुछ दानवाकार है : नदी झील जैसी चौड़ी है, पेड़ों की चोटियां आसमान से बातें करती मालूम होती हैं और उनके पीछे निरन्तर हिमाच्छादित शिखरों पर, जहां तक दृष्टि जाती है, पहाड़ फैले हैं।

इस विशालता के बीच, मैं गतिशील श्वेत ज्योति के एक छोटे-से अण्डाकार पिण्ड को देखती हूं। यह वही बालक है जो अपना सिर ऊंचा किये हुए, बिना भय या दुर्बलता के, दृढ़ता और निश्चय के साथ अपने मार्ग पर चल रहा है।

यह दृश्य महानता से भरा है। मैं उस पर एकाग्र होकर चिन्तन करती हूं, मैं चिन्तन करती हूं और यह समझ पाती हूं कि मनुष्य, मात्र अपने बल के शिखर पर जिसे प्राप्त करने में कठिनाई अनुभव करता है उसे एक बालक, लगभग बिना किसी कठिनाई के उपलब्ध कर सकता है, यदि उसे उनका प्रेम और शक्ति प्राप्त हों जो उनके साथ एक हैं।

निश्चय ही घनिष्ठ सम्बन्ध द्वारा श्रेणीबद्ध समूहीकरण विजय की ओर ले जाने वाला पथ है!

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

दिसम्बर

१. यह देखना आसान है कि भूलें सत्ता में सच्चाई के अभाव के कारण होती हैं—इससे निकलने का एकमात्र उपाय है सच्चा होना। तुम्हें इस उद्देश्य के लिए संकल्प, शक्ति और ज्ञान दिये गये हैं।

२. हमें हमेशा अज्ञान से मुक्त होने और एक सच्ची श्रद्धा पाने के लिए अभीप्सा करनी चाहिये।

३. सत्ता में सब कुछ मौन है, लेकिन नीरवता के वक्ष में वह दीपक जलता है जिसे कभी बुझाया नहीं जा सकता—वह उस तीव्र अभीप्सा की अग्नि है जो भगवान् को जानना और उन्हें सम्पूर्ण रूप से जीना चाहती है।

४. आओ, हम अपने-आपको निःशेष भाव से भगवान् के अर्पण कर दें, इस तरह हम भागवत कृपा को अच्छी-से-अच्छी तरह पा सकेंगे।

५. सहायता हमेशा मौजूद रहती है। यह तो तुम्हें ही अपनी ग्रहणशीलता को जीवित-जाग्रत् रखना है। कोई मनुष्य जितना ग्रहण कर सकता है, भगवान् की सहायता उससे कहीं अधिक विशाल होती है।

६. हर एक को अपना अवसर दिया जाता है और सभी के लिए सहायता उपस्थित रहती है—लेकिन हर एक को उसकी सच्चाई और निष्कपटता के अनुपात में लाभ होता है।

७. हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण, सभी अवस्थाओं में 'भागवत कृपा' हमें सभी कठिनाइयों को पार करने में हमारी सहायता के लिए मौजूद है।

८. 'भागवत कृपा' हमेशा तुम्हारे साथ रहती है और अपने भरोसे के द्वारा तुम उसकी क्रिया को प्रभावकारी होने देते हो।

९. व्यक्ति जितना अधिक जानता है, उतना ही अधिक अनुभव करता है कि वह कुछ नहीं जानता।

१०. केवल 'भागवत कृपा' में अविचल विश्वास और श्रद्धा के साथ पूरी तरह से शान्त और निश्चल बने रहने से ही तुम परिस्थितियों को

यथासम्भव अच्छे-से-अच्छा पा सकते हो। उन लोगों के लिए **हमेशा अच्छे-से-अच्छा होता है** जो भगवान् और केवल भगवान् पर ही पूरा भरोसा करते हैं।

११. जब कभी, अपने जीवन में तुम्हें कठिनाई का सामना करना पड़े तो उसे प्रभु की कृपा के वरदान के रूप में लो और वह वही बन जायेगा।

१२. हमें इस बात का निश्चय होना चाहिये कि जो कुछ होता है ठीक वही होता है जो हमें और संसार को यथासम्भव जल्दी-से-जल्दी अपने लक्ष्य—भगवान् के साथ सायुज्य और अन्ततः 'भागवत' अभिव्यक्ति—तक पहुंचाने के लिए होना चाहिये। और यह—निष्कपट और सतत श्रद्धा—एक ही साथ हमारी सहायता और सुरक्षा बन जाती है।

१३. अर्पण : रूपान्तर के लिए अपनी सम्पूर्ण सत्ता को, उसकी सभी सच्ची और मिथ्या, अच्छी और बुरी, उचित या अनुचित क्रियाओं के साथ भगवान् के सामने रखना।

१४. भगवान् के प्रति सच्चे और निष्कपट निवेदन में ही हम अपने सभी दुःखों से छुटकारा पा सकते हैं।

१५. हर चीज कितनी, कितनी महान्, कितनी सरल और कितनी शान्त बन जाती है जब हमारे विचार 'भगवान्' की ओर मुड़ जाते हैं और हम अपने-आपको 'भगवान्' को समर्पित कर देते हैं।

१६. ब्योरेवार समर्पण का अर्थ है, जीवन के समस्त ब्योरों का, छोटी-से-छोटी और देखने में अत्यन्त नगण्य चीज का भी समर्पण। और इसका अर्थ है, सभी परिस्थितियों में भगवान् को याद रखना, हम जो कुछ सोचें, अनुभव करें या करें, उस सबको भगवान् के लिए, 'उनके' निकट आने के लिए, वे हमें जो बनाना चाहते हैं अधिकाधिक वही बनने के लिए, पूरी सच्चाई के साथ, शुद्ध रूप में 'उनकी' इच्छा अभिव्यक्त करने के लिए, 'उनके' प्रेम का यन्त्र बनने के लिए करें।

१७. हम प्रभु के आगे अपने प्रस्ताव रखने के लिए हमेशा स्वतन्त्र हैं लेकिन अन्ततः केवल 'उन्हीं' की इच्छा चरितार्थ होती है।

१८. स्नेह और 'प्रेम' के लिए प्यास मनुष्य की आवश्यकता है, लेकिन वह केवल तभी बुझ सकती है जब वह 'भगवान्' की ओर मुड़े। जब तक वह मनुष्यों में सन्तोष पाना चाहती है तब तक हमेशा निराश या घायल होती रहेगी।

१९. पवित्र होने का अर्थ है, और किसी के नहीं केवल 'परम प्रभु' के प्रभाव के प्रति खुलना।

२०. तुम जो नहीं चाहते उस पर नहीं, उसके विपरीत, जो होना चाहते हो उस पर एकाग्र होओ।

२१. भगवान् से सचमुच प्यार करने के लिए हमें आसक्तियों से ऊपर उठना चाहिये।

२२. स्थिरता और तमस् में घपला मत करो। स्थिरता है आत्म-संयत शक्ति, अचञ्चल और सचेतन ऊर्जा, आवेशों पर प्रभुत्व और अचेतन प्रतिक्रियाओं पर नियन्त्रण। काम में स्थिरता निपुणता का मूल और पूर्णता की अनिवार्य शर्त है।

२३. हमेशा अचञ्चल, स्थिर और शान्त रहो और पूर्ण सच्चाई की पारदर्शकता द्वारा दिव्य 'शक्ति' को अपनी चेतना में काम करने दो।

२४. तुम्हें बाहरी परिस्थितियों में अचञ्चलता की खोज न करनी चाहिये, वह तुम्हारे अपने अन्दर है। सत्ता की गहराइयों के अन्दर एक ऐसी शान्ति है जो समस्त सत्ता में, शरीर तक में अचञ्चलता लाती है —अगर तुम उसे लाने दो।

तुम्हें उस शान्ति की खोज करनी चाहिये और तब तुम्हें वह अचञ्चलता मिल जायेगी जिसकी तुम्हें चाह है।

२५. स्थिर, प्रबल और निरन्तर शान्ति द्वारा ही सच्ची विजयें पायी जा सकती हैं।

२६. मन की शान्ति को अनुकूल परिस्थितियों द्वारा नहीं बल्कि आन्तरिक रूपान्तर द्वारा प्राप्त करना चाहिये।

२७. शक्ति को नीचे उतार कर उसे क्षुद्र मानव सत्ता की संकीर्णता में बलपूर्वक प्रविष्ट करवाने की अपेक्षा अपने-आपको यथासम्भव अधिक-से-अधिक **विस्तृत** करना और विशालता के साथ खोलना कहीं अधिक प्रभावशाली होता है।

२८. पूर्ण सामञ्जस्य : वस्तुओं के बीच सामञ्जस्य, लोगों के बीच सामञ्जस्य, परिस्थितियों का सामञ्जस्य और सबसे बढ़ कर 'परम सत्य' की ओर अभिमुख सभी अभीप्साओं का सामञ्जस्य।

२९. खुलापन शक्ति और प्रभाव को ग्रहण करने और प्रगति के लिए उनका उपयोग करने के लिए संकल्प है; परम चेतना के साथ सम्पर्क बनाये रखने की सतत अभीप्सा है; यह श्रद्धा है कि शक्ति और चेतना हमेशा तुम्हारे साथ, तुम्हारे चारों ओर, तुम्हारे अन्दर हैं और बस तुम्हें इतना ही करना है कि उन्हें ग्रहण करने के रास्ते में किसी भी चीज को बाधक न बनने दो।

३०. 'समस्वरता' प्रकट करने के लिए सभी चीजों में दिव्य सरलता सबसे अच्छी है।

३१. साधक भगवान् से शान्ति पाता है, ऐसी शान्ति जो बाहरी परिस्थितियों से एकदम स्वतन्त्र है। भगवान् की ओर अधिक मुड़ो, वास्तविक आन्तरिक शान्ति के लिए अभीप्सा करो और तुम्हें बिना विघ्न-बाधा के अपना काम चलाते रहने के लिए काफी शान्ति मिल जायेगी। आशीर्वाद।

गुप्त रहस्य

उम्र बढ़ती जाती है, अप्रिय परिस्थितियां घेरे रहती हैं, इन सबके बावजूद युवा और बलवान् कैसे रहा जा सकता है?

इसके लिए तुम्हें खुश रहना चाहिये, हमेशा खुश, जीवन की सभी परिस्थितियों में सचमुच खुश।

यह बात असम्भव मालूम होती है। सारा संसार दुःख-दर्द से, दीनता से भरा है, हमारे चारों ओर का जीवन पीड़ा और अशुभ से भरा है। ऐसा लगता है कि हमारे चारों तरफ मानवजाति व्यथा से कराह रही है। और इस सारे दुःख के बीच खुश रहना? मान लो किसी विरल सौभाग्य के कारण तुम्हारा जीवन सुख, शान्ति से भरा और सन्तोषपूर्ण है, फिर भी औरों के बारे में? जब तक कि तुम पूरी तरह आत्म-केन्द्रित न होओ तब तक तुम इन सबके बीच सुखी कैसे रह सकते हो?

युक्तियां तर्कसंगत हैं, फिर भी, सच्ची नहीं हैं। लेकिन कैसे?

सच्ची बात तो यह है कि असली सुख बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं होता। सचमुच वह तुम्हारी अन्तरात्मा की चीज है, अन्तरात्मा उसे चारों ओर फैलाती है, यह तुम्हारे अन्दर भागवत चिनगारी की प्रकाशित करने वाली ऊष्मा है। जब तुम उसके सम्पर्क में होते हो तो खुश रहते हो। यही सत्य है, और यही कारण है कि कई लोग स्वभाव से खुश रहते हैं, और कई नाखुश। तुम इसलिए खुश रहते हो क्योंकि खुशी तुम्हारी अपनी सत्ता का एक अंग है, तुम्हारी चेतना का एक गुण है—खुशी तुम्हारी अन्तरतम आत्मा से आती है।

और जिस तरह तुम अपने प्रकाश को बुझा कर अन्धकार को दूर नहीं कर सकते—तुम उसे बढ़ा देते हो—दूसरों के दुःख का उपचार करने का सबसे अच्छा तरीका है अपनी खुशी को फैलाना, अपने दीये को जला कर उसे प्रकाश फैलाने देना। परोपकारियों का यह तरीका नहीं होता; वे भिक्षा द्वारा दुःख-दर्द को खदेड़ना या तितर-बितर करना चाहते हैं, लेकिन उन्हें कभी सफलता नहीं मिलती। तुम 'मंसिअ वैंसां' फ़िल्म की कहानी जानते हो, वह जितना अधिक दान देता था उतनी ही दुःखियों की संख्या अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी।

तुम्हें मूल में जाना होगा। मानव जीवन में अशुभ का सच्चा स्रोत है मनुष्य का अपनी अन्तरात्मा के साथ सम्पर्क खो बैठना। उस सम्पर्क को फिर से स्थापित करो, तब कठिनाइयां एक और ही भिन्न दृष्टिकोण से देखी और अनुभव की जायेंगी और उसी तरह हल होंगी जिस तरह उन्हें हल होना चाहिये। इस स्थिति में पीड़ा-दुःख-दर्द भी अपना रूप बदल लेते हैं और प्रगति और विकास की परिस्थिति और अवसर बन जाते हैं। तुम उनका अनुभव करते हो लेकिन उनसे पराजित नहीं होते और उनके बावजूद खुश रहते हो, यहां तक कि उल्लास से भरे होते हो। बुद्ध ने इसकी कोशिश की—अपने ही ढंग से। ईसा भी यही करना चाहते थे—कहा जाता है कि वे भारत आये थे—यह पूरी तरह से पूर्व का तरीका है, यानी अपनी अन्तरात्मा को जगाओ, उसे फिर से ढूंढ़ कर अपने जीवन के शासक के रूप में प्रतिष्ठित करो...। यही है गुप्त रहस्य।

(नलिनीकान्त गुप्त के एक भाषण से)

एक साधक के साथ पत्र-व्यवहार

(ये पत्र एक ऐसे साधक को लिखे गये थे जो उन्नीसवीं शती के तीसरे दशक में श्रीअरविन्दाश्रम में दांतों के डॉक्टर थे और १९३८ से १९५० तक श्रीअरविन्द की व्यक्तिगत सेवा में रहे थे। पूरा पत्र-व्यवहार अंग्रेज़ी में हुआ था।)

(साधक ने अपनी कापी में पेंसिल से एक पैर का रेखाचित्र बनाया जो एक कमल को छूने के लिए आगे बढ़ा हुआ था) फिर लिखा, "इस कापी को इस भद्दी भेंट से खराब करने के लिए क्षमा कीजिये।"

क्षमा की कोई बात नहीं है। यह सब समर्पण-भाव से है।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

१४ अक्तूबर १९३८

क्या चैत्य ज्वाला का वैदिक अग्नि के साथ कोई सम्बन्ध है? ऐसा लगता है कि दोनों के लगभग समान गुण हैं।

हां, ये दोनों एक ही चीज के दो नाम हैं।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२० अक्तूबर १९३८

मां, मुझे अपने सत्य के आवास में ले चलो, मैं तुम्हें अपने उत्तरोत्तर समर्पण की इच्छा और वर्धनशील पूजा-भाव की भेंट करता हूं।

रास्ता खुला हुआ है मेरे बालक! मैं भुजाएं फैलाये हुए प्रेम के साथ तुम्हें उनमें बांध लेने के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा करती हूं—अपने प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२२ अक्तूबर १९३८

मेरे जीवन के जीवन, मैं भी तुम्हारे पास आना चाहता हूं; क्योंकि केवल तुम्हारी भुजाओं में ही मुझे शान्ति, सुख, आनन्द, सत्य का सत्य और मेरे जीवन तथा मेरी सत्ता की परिपूर्णता मिलेगी। फिर भी, मेरे उज्ज्वल प्रकाश, मेरे लिए मार्ग स्पष्ट नहीं है। मैं तुम्हारे चकराने वाले शिखरों तक अपनी मर्त्य प्रकृति की जकड़ने वाली भारी जंजीरों के साथ कैसे चढ़ पाऊंगा?

तुम मुझे अपनी भुजाओं में ले लेने दो तब चढ़ना आसान हो जायेगा।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२५ अक्तूबर १९३८

हे मां, मैं आपके प्रेम के उत्कृष्ट कार्य से कैसे उऋण हो सकूंगा? आपने कैसे जाना कि यह मेरे हृदय की अन्तर्तम इच्छा है? आप बहुत, बहुत ज्यादा आराध्य और अपने छोटे-से बालक के प्रति बहुत-बहुत मेहरबान हैं, जो आपसे प्रेम करता है और बहुत प्रसन्न है।

मेरे बहुत प्यारे बालक, मेरे प्रेम में निवास करो, उसे अनुभव करो, उससे भर जाओ और प्रसन्न रहो—कोई चीज मुझे इससे ज्यादा खुश नहीं कर सकती।

अति स्नेह सहित।

२८ अक्तूबर १९३८

मैं प्रथमतः और अन्ततः तुम्हारा बालक हूं और इस काम का मेरे लिए इसके सिवा कोई मूल्य नहीं है कि मैं आपकी इच्छा पूरी कर सकता हूं, कि इसके द्वारा मैं आपका अधिक अच्छा और सच्चा बालक बन सकता हूं, हे मेरी प्यारी मां!

हां, तुम मेरे बालक हो और यह बात सच्ची है कि सभी चीजों में यही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है...। प्यारे बालक, मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं और मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हें कभी नहीं छोड़ते।

३१ अक्तूबर १९३८

मेरे पिछले जन्मदिन पर, विदाई के समय आपके शब्द थे: "अपनी श्रद्धा बनाये रखो।" मैं अब भी यह सोच रहा हूं कि आपका इससे ठीक-ठीक क्या मतलब था, मेरी प्यारी मां, आप मुझसे किस तरह की श्रद्धा के लिए अभीप्सा करवाना चाहती हैं?

भागवत कृपा और उसकी तुम्हें रूपान्तरित करने की शक्ति पर श्रद्धा।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

४ नवम्बर १९३८

प्यारी, प्यारी, प्यारी मां,

हर रोज मेरे लिए आप अधिक-से-अधिक प्यारी और अधिक-से-अधिक आराधनीय बनती जा रही हैं। आप किस भागवत रहस्य द्वारा हम पर यह मधुर जादू डालती हैं?

एकमात्र रहस्य और एकमात्र जादू है मेरा प्यार—मेरा वह प्यार जो मेरे बच्चों पर फैला हुआ है और जो उनकी सहायता और रक्षा के लिए भागवत कृपा को नीचे पुकारता है।

६ नवम्बर १९३८

आजकल आप मुझे रोज अपना प्यार और आशीर्वाद भेजती हैं प्यारी मां, और कुछ विरल, धन्य क्षणों में, मैं अवश्य यह अनुभव करता हूं कि हम हमेशा आपके प्रेम से घिरे रहते हैं। लेकिन जहां तक एक सच्चे प्रत्युत्तर की बात है, मेरा हृदय पत्थर का बना लगता है, वरना वह ऐसे प्रेम के प्रति खुलने से क्यों इन्कार करता?

कुछ भी प्रेम के सतत कार्य का विरोध नहीं कर सकता। वह सभी प्रतिरोधों को पिघला देता और सभी कठिनाइयों पर विजय पा लेता है...

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

९ नवम्बर १९३८

मैं जानता हूं कि आपका प्रेम और आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ हैं। कभी-कभी मैं चाहता हूं कि आप मेरे ऊपर निरपवाद रूप से इतनी मेहरबान और कृपालु न होतीं। इसके कारण मुझे यह कहना और भी ज्यादा कठिन लगता है कि मेरी प्रकृति की कुछ ऐसी कठिनाइयां हैं जो मुझे आपको और आपके योग को उचित भाव में स्वीकार करना कठिन बना देती हैं। और इसके बिना शिष्यत्व ही क्या हुआ?

मैं गुरु की तरह प्रेम और आशीर्वाद नहीं देती, बल्कि मां की तरह देती हूं जो अपने दिये के बदले कुछ भी नहीं मांगती।

९ जुलाई १९३९

माताजी,

आपकी यह बात कितनी मधुर है कि आप मां का प्रेम देती हैं जो बदले में कुछ नहीं चाहती। यह आपके लिए ठीक है क्योंकि आपका तो आत्म-परिपूर्ण जीवन है, लेकिन मुझे तो अभी अपने मानव जीवन को सन्तुष्ट करने के लिए सब कुछ प्राप्त करना है। मुझे तो अभी अपनी अन्तरात्मा को और अध्यात्म-पुरुष को जानना है, दिव्य सत्ता को जानना और उससे प्रेम करना है, उसे अपने जीवन में चरितार्थ करना है और जगतों को जानना है—अगर उसकी मरजी हो कि मैं यह सब करूं । और इस सबसे बढ़ कर मुझे जगज्जननी, आद्या शक्ति, महाकाली के दर्शन करने हैं। उसे पता होगा कि मेरे लिए सबसे अच्छा क्या है। तब फिर मैं ऐसे गुरु के बिना कैसे काम चला सकता हूं जो मुझे उसके चरणों तक पहुंचा दे।

मैं सारे संसार में श्रीअरविन्द के सिवा और किसी को नहीं देखती जो तुम्हें महाकाली के चरणों तक पहुंचा सके।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ ।

१६ जुलाई १९३९

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २३४-३८

मृत्यु का अर्थ

(किसी ऐसे के नाम जिसके मित्र की मृत्यु हो गयी थी)

अब तुम इस शरीर पर झुककर उसकी देखभाल न कर सकोगे, अब तुम अपनी क्रियाओं द्वारा अपने गभीर स्नेह को अभिव्यक्त न कर सकोगे और यही कष्टकर है। लेकिन तुम्हें इस अवसाद पर विजय पानी चाहिये। अन्दर देखो, ऊपर देखो, क्योंकि केवल जड़-भौतिक शरीर ही विघटित होगा। उसके अन्दर जिन चीजों से तुम प्रेम करते थे वे जड़-भौतिक आवरण के विघटन से किसी भी तरह प्रभावित नहीं होतीं, और अगर गभीर प्रेम की शान्ति में, तुम अपना विचार, अपनी ऊर्जा उस पर एकाग्र करो, तो तुम देखोगे कि वह तुम्हारे निकट रहेगी और उसके साथ तुम्हारा सचेतन सम्पर्क हो सकता है, ऐसा सम्पर्क जो अधिकाधिक ठोस होगा।

*

अगर हम अपने अन्दर, कुछ अधिक अन्दर जायें तो हमें पता लगेगा कि हममें से हर एक के अन्दर एक चेतना है जो युगों से जीती आ रही है और विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती आ रही है।

२४ जनवरी १९३५

हम मृत्यु को देवता क्यों कहते हैं? क्या वह भी मिथ्यात्व के स्वामी की तरह असुर नहीं है?

मनुष्य की चेतना में वह भगवान् बन गया है और यही कारण है कि उसे रूपान्तरित करना इतना कठिन है।

२९ अक्तूबर, १९७२

मेरी प्रिय बच्ची,

'क' का अचानक निधन यहां सबके लिए कष्टदायक क्षति है। वह अपने उत्सर्ग में और अपने काम की ईमानदारी में पूर्ण था, ऐसा व्यक्ति

जिस पर हम भरोसा कर सकते थे, जो सचमुच एक विरल गुण है। वह सौर प्रकाश में चला गया है और उस सचेतन विश्राम का उपभोग कर रहा है जिसका वह सचमुच अधिकारी था।

५ जुलाई १९६५ —श्रीमां

"जो हो चुका उसे अब शान्ति के साथ परम प्रभु के निर्णय और दिवंगत की अन्तरात्मा के लिए उसके उत्तरोत्तर जीवनों में जो अच्छे-से-अच्छा हो सकता है उस रूप में लेना चाहिये, यद्यपि मानव दृष्टि में यह सर्वोत्तम नहीं है जो दृष्टि केवल वर्तमान को तथा बाहरी रूपों को ही देखती है। आध्यात्मिक पथ के जिज्ञासु के लिए मृत्यु बस एक जीवन से दूसरे जीवन में जाने का मार्ग है, और, कोई मरता नहीं, बस प्रयाण कर लेता है। उसे उसी रूप में देखो और अपने अन्दर से प्राणिक दुःख की सभी प्रतिक्रियाओं को झाड़ फेंको,—यह दुःख मृतक की आगे की यात्रा में किसी भी तरह सहायक नहीं हो सकता,—भगवान् की ओर ले जाने वाले पथ का अनुसरण स्थिरता के साथ करो।"

—श्रीअरविन्द

प्रेम का चमत्कार

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसने बड़े ऐश्वर्य में अपना जीवन व्यतीत किया था। लेकिन एक दिन अकस्मात् उसका मन मोह-माया से इतना उचटा कि उसे लगा, दुनिया माया-जाल है। यदि सच्चा कुछ है तो प्रेम है। सेठ ने अपनी धन-सम्पत्ति से एक मन्दिर का निर्माण करवाया और उसमें प्रेम की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी। सभी धर्मों के श्रद्धालु जन उस मन्दिर में आते और प्रेम की उपासना करते। 'सर्वधर्म समभाव' का वह मन्दिर प्रतीक बन गया। भक्ति की धारा वहां प्रवाहित होने लगी। एक दिन एक नास्तिक वहां आया। प्रेम-धर्म का चमत्कार देख कर उसका मन विद्रोह कर उठा। उसे सेठ पर बड़ा क्रोध आया और उसने निश्चय किया कि उसका खात्मा कर देगा। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।

अगले दिन वह एक छुरा अपने कपड़ों में छिपा कर वहां पहुंचा। लोग

मस्ती में झूम रहे थे। उसकी क्रोधाग्नि में घी पड़ गया। वह अवसर देखने लगा कि कब वह सेठ अकेला हो और कब वह उसका काम तमाम कर दे। अन्त में उसे इसका अवसर मिल ही गया। वह सेठ के पास पहुंचा। सेठ ने बड़े प्यार से उसका स्वागत किया, "तुम बड़े थके-से लग रहे हो। बैठो, मैं तुम्हारे लिए कुछ खाने को लाता हूं।" इतना कह कर सेठ ज्यों ही उठा कि नास्तिक का हाथ छुरे की ओर बढ़ा। पर यह क्या! उसका हाथ किसी ने जकड़ लिया। उसे सुनायी दिया, "अरे पापी, यह क्या करना चाह रहा है! मूर्ख, प्रेम को कोई मार नहीं सकता। वह आत्मा का धर्म है। जिस तरह आत्मा अमर है, उसी तरह प्रेम अमर है।" यह स्वयं प्रेम की वाणी थी, पर उठी उसी के अन्तर से थी। नास्तिक हतप्रभ हो गया। उसने छुरे को निकाला और दूर फेंक दिया। उसकी आंखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। प्रेम-धर्म ने उसके जीवन को एक नयी दिशा में मोड़ दिया था।

'जीवन साहित्य' से —यशपाल जैन

'नयी कोंपलें' :

आवाज सुन कर...

घने आसमां की आवाज, पेड़ों की छांव, कोहरे की धुन्ध में अपना ही नशा है। राह पर चलते एक पल के लिए लगा मानों किसी शब्द की कोमलता कानों को सहला रही है। आंखों में शीतल हवा का झोंका, मर्म तक सुकून की बौछार कर रहा हो। पर फिर लगा—

प्यार क्या होता है हम नहीं जानते,
जिन्दगी को अपना हम नहीं मानते,
गम इतने मिले हैं कि अब अहसास नहीं होता,
प्यार करे कोई सच्चा तो भी विश्वास नहीं होता।

जिन्दगी में हर कदम को नाप कर चलना, उसका मजा छीनने के बराबर है। उस आजादी की डोर का सिरा कहां है जो हमें हमसे मिलाने के लिए तत्पर रहता है?

पंछी की तरह गगन में उड़ने की ख्वाहिश का ख्वाब देखना ही जिन्दगी को रंगीन बनाने का एक बड़ा कदम है। अपने मन की बात न सुनने पर हमारे अन्दर का संगीत अधूरा-सा रहता है क्योंकि हम उसे पूरा करने की कोशिश में लगन लगाते ही नहीं।

हम हमेशा अपने ही अन्दर का शोर सुनते रहते हैं—यह कर लूं, कुछ दिनों से कहीं घूमना नहीं हुआ...। यह सब दिमाग में चलता ही रहता है। जब इन्हीं अलग-अलग विचारों में ताल-मेल आ जाये तभी हम अन्दर के संगीत को सुनने लगते हैं और कुछ हद तक समझने भी लगते हैं।

हम खुद को ही भुला देते हैं! खुद को भुलाने से हम यह जरूर भूल जाते हैं कि हम उलझे हुए हैं, परन्तु यह हल नहीं है। हमें अपने-आपको सुलझाने के लिए उलझन से बाहर निकलने का संघर्ष करना पड़ेगा—अपने अन्दर की आवाज सुन कर। आखिर खुद को पहचानना होगा।

—शक्ति शर्मा

"अच्छा जीजी, नमस्ते..."

(एक सच्ची कहानी)

"अच्छा जीजी, नमस्ते..."

मां का हृदय आकर सहसा गले में अटक गया और गला एकदम से रुंध गया। अन्दर ही अन्दर अजीब टीस की लहरें दौड़ने लगीं, साथ-ही-साथ आंखें ढुलढुला आयीं। आंसुओं की धारा के निकलने से पहले उन्होंने अपने समस्त मनोबल से दांत भींच कर अन्दर की तरफ सांस खींच कर आंसू पी लिये। लेकिन आंखें बरसना चाहें तो क्या कभी आंसुओं की कमी होती है?

लेकिन मां इस क्षण किसी भी हालत में कमजोर नहीं पड़ना चाहती थीं। नहीं तो उस असहाय-सी दयनीय दृष्टि की हिम्मत भी टूट-टूट कर बिखर जाती।

अपने-आपको यथाशक्ति बटोर कर फीकी-सी हंसी के साथ मां ने अनायास नजर ऊपर की, और हाथ जोड़ दिये। स्ट्रेचर पर लेटे रोगी के मुख पर वही चिर-परिचित प्यारी मुस्कान क्षण-भर के लिए खिल उठी

और वह सिर घुमाते-घुमाते टकटकी बांधे मां को तब तक देखता रहा जब तक कि उसका स्ट्रेचर ऑपरेशन थियेटर के अन्दर न चला गया, वही अस्फुट स्वर फिर सुनायी दिया, "अच्छा जीजी, नमस्ते।"

मां आंखें पोंछती, भारी कदमों से अस्पताल का ज़ीना उतरने लगीं।

कभी-कभी सगे भी दुश्मन बन जाते हैं और कभी राह चलते अजनबी को देख कर उसके प्रति आत्मीयता उमड़ पड़ती है, लगता है मानों हम किसी आन्तरिक डोर से बंधे हैं, कुछ ऐसी ही कहानी है उपर्युक्त प्रसंग की। चलें आरम्भ की ओर—

उस दिन मां के मुंह से किसी अपरिचित, बहुत दूर के मामाजी के आने की बात सुन कर हम चारों बहनों के भीतर का छोटा ज्वालामुखी मां पर फूट पड़ा—"जब देखो मेहमान, जब देखो मेहमान। आप ही तो उन्हें प्रश्रय देती हैं, हर एक को चिट्ठी में न्योता देती फिरेंगी, भई दिल्ली आओ तो मिलना जरूर। क्या जरूरत है घर में हर समय पलटन सजाने की। अब दो महीने के लिए ये मामाजी पधारेंगे! आपने तो हमारी सारी छुट्टियां रेत डालीं।" मां-पापा ने पहले अपनी ढेर सारी ममताभरी मुस्कान से हमारे ज्वालामुखी को शान्त किया, फिर हमें समझाते हुए मां बोलीं—"नहीं बेटे, ऐसे नहीं कहा करते। बिचारे तीन साल से हृदय-रोग से त्रस्त हैं, ऑपरेशन की तारीखें आयीं और टल गयीं। अब तुम्हारे पापा की इतनी भाग-दौड़ के बाद यहां 'ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट' में ऑपरेशन होगा। तुम लोग यूं आरम्भ में ही टोक कर अपशकुन की रेखा न खींच दो।"

हम सब स्तब्ध। क्षण-भर के लिए मां मुझे मानव-मात्र की मां लगीं जो अपने बच्चों को स्वार्थ के संकीर्ण, तुच्छ दायरे से निकाल कर इन्सानियत की हलकी-सी झलक दिखा रही थीं। शायद मां स्वयं इस बात से अनभिज्ञ हों लेकिन उनके अन्दर से विस्तृत ममत्व को झरते देखा तो हमारे अन्दर भी "वसुधैव कुटुम्बकम्" का छोटा-सा स्रोत फूट पड़ा।

रिश्तेदारी की डोर को बहुत दूर तक खींचा जाये तो वे रिश्ते में हमारे मामाजी लगते थे। अब हम उनके आने की बाट जोहने लगे। साथ-ही-साथ एकदम अपरिचित व्यक्ति से मिलने की उत्सुकता भी हमारे अन्दर ठाठें मारने लगी।

नियत दिन जब एक दुबले-पतले, सिकुड़े-सिमटे मजनूनुमा व्यक्ति ने घर में पांव रखा तो उसने अपनी मधुर मुस्कान से हम चारों को अपने निकट खींच लिया। कुछ ही दिनों में वे हमारे घर में इतने घुल-मिल गये कि हमें मां के द्वारा पहले-पहल दिया गया उनका औपचारिक परिचय "बेटे, ये तुम्हारे मामाजी हैं" हास्यास्पद-सा लगने लगा।

वे अन्दर से सख्त बीमार थे। उनके हृदय का एक "वाल्व" बिलकुल बेकार हो गया था लेकिन अन्दर की पीड़ा उनके चेहरे पर एक शिकन तक न ला पायी थी। हमेशा यूं हंसते-हंसाते रहते कि स्वस्थ पुरुष भी जीवन के प्रति उनके मनोभाव को देख दंग रह जाये। उनके इस हंसोड़ स्वभाव के कारण हम उनकी गम्भीर बीमारी को भूल जाते थे और इस कारण मुहर्रमी चेहरा हमारे घर से दूर ही रहता था और घर की हंसी-खुशी उन्हें अपने अन्दर के दर्द को धीरज के साथ सहने की शक्ति प्रदान करती थी।

अतीत के सुख-दुःख की लपेट में डूबती-उतराती, जीवन के विभिन्न पहलुओं को भोगे हुए अनुभवी मां का चिन्ताकुल चेहरा देखते तो वे झट कह उठते—"अरे जीजी, यह क्या? दर्द मेरे है और छाती तुम कूट रही हो। मैं पूछता हूं अब चिन्ता किस बात की है? मैं तुम्हारे पास आ गया हूं, अपनी इन भांजियों के पास आ गया हूं, अब यहां से पूरी तरह ठीक होकर ही घर लौटूंगा। देखना, चट ऑपरेशन और पट स्वस्थ।"

मां और पापा देख-देख कर ताज्जुब करते कि जो बच्चे मेहमान शब्द से ही नाक-भौं सिकौड़ते हैं वे पन्द्रह दिन पहले आये एकदम अपरिचित मामा के सारे काम बड़े उत्साह से कर रहे हैं। मामाजी के लिए बाजार से दवाई लानी होती तो हम सब दौड़ते, उन्हें अस्पताल ले जाना होता तो चारों संग-संग चलते। इसी तरह हंसी-मजाक में २०, २५ दिन निकल गये। एक बार फिर से ऑपरेशन की तारीख १५ दिन के लिए टल गयी। उस दिन हमने पहली बार उनके चेहरे पर विषाद उमड़ता देखा। ऐसा लगा कि भीतर से इनका शरीर सचमुच जर्जर हो गया है, कष्ट के जिस दौर से वे गुजर रहे हैं उसमें ऑपरेशन होना कितना आवश्यक है। लेकिन वह विषाद का कोहरा बस क्षण-भर के लिए छाया और उसके बाद हंसी की वही उज्ज्वल धूप खिल उठी।

रक्षाबन्धन का दिन था। उस दिन मामाजी काफी सवेरे-सवेरे तैयार होकर नीचे उतर आये। कुछ देर तक यूं ही कमरों में चहलकदमी करते रहे। मां को काम में व्यस्त देख हार कर बोल उठे—"क्यों भई, जीजी, टीका-वीका कब करोगी? जल्दी आओ। मुझे भी भूख लगी है।"

चावल की थाली पटक कर मां सिर पर हाथ मारते हुए हमसे बोलीं —"गजब हो गया। राखियां तो सारी भेज चुकी।" ठीक ऐसे समय हमारी जीजी मानों गजेन्द्रमोक्ष की तरह रोली, अक्षत और कलावा लेकर मां के आगे आ खड़ी हुईं। उनकी जान में जान आयी, फिर तो हम बहनों ने भी उनके हाथों में कलावा बांध कर ही दम लिया। मां हंस पड़ीं—"लो मामाजी को भाई भी बना बैठे तुमलोग।" लेकिन हमारे पास मां को यह बताने के लिए शब्द न थे कि हमने उन्हें कलावे से नहीं, प्रेम की डोर से बांध लिया है।

इसी तरह हंसी-खुशी में डेढ़ महीना कैसे बीत गया किसी को खबर तक न हुई। आखिर पन्द्रह दिन बाद मई की २१ तारीख को उनके ऑपरेशन की तारीख निकली। जैसे-जैसे दिन करीब आते गये, घर में एक भारीपन-सा छाने लगा। हम सब भी ऑपरेशन की गम्भीरता से परिचित थे, लेकिन मामाजी का चेहरा और भी दमकने लगा था। वे घर के वातावरण को हमेशा हलका बनाये रखने की कोशिश करने लगे। ऑपरेशन के सात दिन पहले ही उन्हें अस्पताल में दाखिल कर लिया गया। अब हम सबका अधिकांश समय अस्पताल में ही बीतता।

आखिर २१ तारीख भी आ गयी। हम सुबह-सवेरे पूजाघर में जा घुसे और मां के अस्पताल से वापिस आने पर ही बाहर निकले। उनकी उस दयनीय दृष्टि ने और ऑपरेशन थियेटर के अन्दर जाते-जाते की गयी 'नमस्ते' ने मां के अन्दर की जड़ें हिला दी थीं। मां होश-हवास खो बैठीं। खाने-पीने की सुध-बुध न रही। वे न जाने कितनी देर तक पूजाघर में बैठी कुछ बुदबुदाती रहीं, उनकी आंखों से निरन्तर आंसू बहते रहे।

फिर से हम सब अस्पताल के लिए रवाना हो गये। छह घण्टे के कठिन ऑपरेशन के बाद जब ऑपरेशन थियेटर से डॉक्टर निकले तो उनके मुख की प्रसन्नता देख हम सब खुशी से चीख कर एक-दूसरे से लिपट गये। ऑपरेशन सफल रहा।

दूसरे दिन शाम को हमें कमरे के बाहर से उन्हें देखने की इजाज़त मिली तो उसी प्रसन्न मुख ने हमारा हार्दिक स्वागत किया। उस समय मुस्कानों ही मुस्कानों में बातचीत हो पायी। हमें सुनायी दिया :

"ए शमअ तेरी उम्र है एक रात, हंस कर गुज़ार या रोकर गुज़ार दे।"

दो ही दिनों में उनके चेहरे पर एक नयी चमक आ गयी। उनके स्वास्थ्य-लाभ को देख हम खुशी से फूले न समाते। सुबह-शाम उनका मनपसन्द खाना ले जाते और उनके घर लौटने के दिन गिनते।

लेकिन... निष्ठुर विधि का विधान कुछ और था...।

२५ तारीख की रात साढ़े बारह बजे अचानक फोन की घण्टी कानों को भेदती हुई बज उठी। मां के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं—वे चीख-सी पड़ीं—'क्या, हालत ज्यादा खराब है? रिश्तेदारों को खबर कर दें?? नहीं, नहीं।' रिसीवर उनके हाथ से ढुलक गया।

हम सब जल्दी-से-जल्दी अस्पताल जा पहुंचे। उनके कमरे में घुसे तो देखा उनकी सांस ऊपर-नीचे हो तो रही है लेकिन डॉक्टरों के यन्त्रों की कृपा से...

न जाने किधर से होकर पंछी उड़ गया।

चेहरे पर वही सदाबहार मुस्कान, वही सौम्यता। निर्विकार चेहरा देख कर ऐसा लग रहा था मानों गहरी नींद में सो रहे हैं, लेकिन कितनी गहरी...

मोमबत्ती की तरह उनका अल्पकालिक जीवन अपने-आपको जला कर अपने चारों ओर प्रसन्नता का आलोक फैलाता हुआ हमेशा-हमेशा के लिए गुल हो गया और कहता गया, 'मेरी मौत पर आंसू बहा कर मेरा अपमान न करना, मैं कहीं नहीं गया, तुम सबके दिल में समा गया हूं।'

मरते मरते भी हमें हंसना सिखा कर चल दिये।
यह अमर जीवन का नुस्खा था सिखा कर चल दिये।

'पुरोधा', जनवरी २००३ से —वन्दना

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :

एक वर्ष—१८० रु.; तीन वर्ष—५२० रु.; पांच वर्ष—८६० रु.।

पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st December 2015
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

vatika
creating lasting value

MatriKiran
SOHNA ROAD

ADMISSIONS OPEN:
Pre-Nursery to Grade 7 2014-15 Session

www.matrikiran.in • (0124) 400-5505

Your child has 5 facets
So should his education

"The most precious gift you can give a child is The Love of Learning" – The Mother